समरथ

जनवरी–फरवरी 2011 ◆ नई दिल्ली

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना अपने प्रिय मित्र अब्दुल रहीम खानखाना, जो बनारस के गवर्नर थे, के संरक्षण में रह कर की।

नवाब वाजिद अली शाह तेरह दिनों तक होली मनाते थे व उनके दरबार में कृष्ण रासलीला खेली जाती थी।

स्वर्णमंदिर की नींव गुरु अर्जुन देव के प्रिय मित्र हज़रत मियां मीर ने रखी थी। जो एक मुसलमान सूफी थे।

नाहि तो जनम नसाई

सिरजन : जश्न साझी विरासत का

मेले भारतीय संस्कृति के सबसे रचनात्मक, विविध रंगी आविष्कारों में से एक हैं। सृजन, धर्म, संस्कृति और स्थानीय बाज़ार के मेल से बनी यह एक परिवर्तनशील रचना है। सदियों या दशकों के विस्तार में फैले ये मेले अपने रूप, रंग और प्रभाव में बदलते गये हैं। लेकिन आक्रामक व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद की तेज बाढ़ में भी उनकी अन्तर्वस्तु के केन्द्रीय पहलू के रूप में एक बहुलवादी सामुदायिकता अभी भी मौजूद है।

बहुत सृजनात्मक रूप से भी और एक पिटे-पिटाये नारे की शक्ल में भी भारत की साझी संस्कृति का बहुत गुणगान किया जाता रहा है। एक तरफ ये अभिमान भी फलता-फूलता रहा है और दूसरी तरफ भारत की साझी संस्कृति व्यक्तिवादी, बाज़ारू और धार्मिक संकीर्णता की शिकार होती रही है। यह वह संस्कृति है जिसके धागे तमाम भाषाओं, रंगों, खान-पान, पहनावे, तौर-तरीकों, कला-रूपों और ज्ञान-विज्ञान की साझी विरासत से बने हैं, उसका कोई भी धागा खींचो तो पूरी चादर उधड़ने लगती है। इसी साझी संस्कृति में पिछले समय में लगातार नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गई है। लेकिन इसी के साथ इस संस्कृति में छिपी प्रतिरोध की ताकत और जिजीविषा का भी पता चलता है। भारतीय संस्कृति के इसी सकारात्मक पहलू ने अपनी रचनात्मकता और साझेपन के सभी रूपों को बचाने और विकसित करने के लिये लगातार संघर्ष किया है। मेले भी साझी सामुदायिकता की ऐसी अभिव्यक्ति हैं जिसमें समाज और जीवन की सामूहिक सृजन क्षमता प्रकट होती है। इन मेलों को बचाना और विकसित करना आज के सांस्कृतिक कर्म की एक बड़ी ज़िम्मेदारी है। हमारा दायित्व है इन मेलों या ऐसे ही सांस्कृतिक रूपों के उन पक्षों को उजागर करना जो सिर्फ एक धर्म, जाति, भाषा या क्षेत्र की पहचान नहीं रखते बल्कि वे अपनी प्रकृति में ही बहुसांस्कृतिक है।

इलाहाबाद में गंगा-यमुना के संगम पर जनवरी-फरवरी के मध्य माघ मेला ही अपनी विराटता में हर छह साल पर अर्द्धकुंभ और हर बारहवें साल पर कुंभ में तब्दील हो जाता है। कहा जाता है प्राचीन काल में महाराज हर्ष हर साल संगम के किनारे अपनी सम्पत्ति दान करते थे और इसी तरह माघ मेले की परम्परा शुरू हुई। यह परम्परा कितनी भी पुरानी हो लेकिन मेले के इस आधुनिक रूप का विकास आजादी के बाद ही हुआ है। हर साल माघ मेले में हजारों कल्पवासी तकरीबन एक महीने के लिये आकर संगम की रेती पर अपना आशियाना बनाते हैं। उनकी सुविधा के लिये बसता है रेत पर तम्बुओं का शहर। एक महीने के लिये लगातार रहने वाले और संक्षिप्त अवधि के लिये आने वाले तीर्थयात्रियों और सैलानियों के लिये रेत पर बसे इस शहर में अस्पताल से लेकर-राशन की दुकान और बाज़ार से लेकर मंदिर, सब उपलब्ध रहता है। कई वर्ग किलोमीटर में फैले इस शहर में बाबाओं के मठ और पंडों के झंडे हवा में तमाम रंग बिखेरते रहते हैं। कुल मिलाकर भारतीय आम सांस्कृतिक जीवन अपनी पूरी व्यापकता के साथ यहाँ मौजूद रहता है।

पूरे मेले का समय जीवन पवित्र स्नान पर्वों में बँटा रहता है - मकर संक्रान्ति से लेकर शिवरात्रि तक और इस बीच फैले रहते हैं तमाम धार्मिक और गैर धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रम, पर्चे, प्रदर्शनियाँ और करतब। माघ मेला सब के लिये है, सभी धर्मों और प्रदेशों का प्रतिनिधित्व यहाँ मिलता है - सुदूर केरल से लेकर कश्मीर तक के लोग यहाँ मिलेंगे। यही नहीं 'शान्ति' की तलाश में भटकते विदेशी लोग भी नज़र आएंगे। संगम के किनारे फैला हुआ यह एक सांस्कृतिक संगम है।

मेला

■ नज़ीर अकबराबादी

क्या वो दिलबर कोई नवेला है
नाथ है, और कहीं यह चेला है
मोतिया है, चंबेली, बेला है
भीड़, अम्बोह है, अकेला है
शहरी, कस्बाती और गंवेला है
ज़र, अशर्फी है, पैसा-धेला है

हैं कहीं राम और कहीं लछमन
कहीं कछमछ है और कहीं रावण
कहीं बाराह और कहीं मोहन
कहीं बलदेव औ कहीं श्री किशन
सब सरूपों में हैं उसी के जतन
कहीं नरसिंह है वो नारायन
कहीं निकला है सैर को बनबन
कहीं कहता फिरे है यूँ बन बन

इतने लोगों के ठठ लगे हैं आ
गो कि तिल धरने की नहीं है जा
लेके मंदिर से दो-दो कोस लगा
बागो-बन भर रहे हैं सब हर जा
हैं हज़ारों बिसाती और सौदा
लाखों बिकते हैं गहने और माला
भीड़, अम्बोह और धरम धक्का
जिस तरफ देखिये अहा हा हा

हैं हज़ारों ही जिन्स के हट्टे
मोती-मूंगा और आरसी बट्टे
पेड़े, लड्डू, जलेबी और गट्टे
कोले, नारंगी संतरे खट्टे
कोई तो कर रहा है छल बट्टे
कोई चढ़ाता है खीर के चट्टे
पुर है मंदिर के कोठे और अट्टे
बूढ़े, लड़के, जवान और कट्टे

नाच और राग के खडाके हैं
घुँघरू और ताल के झनाके हैं
नकलें, किस्से कहानी, साके हैं
खंड, दोहरे, कवित्त कथा के हैं
कहीं आगोश के झपाके हैं
कहीं बोसों के सौ झपाके हैं
थरथरी, दांत पर कड़ाके हैं
तिस पे जाड़े के सौ झड़ाके हैं

सैकड़ों रंग रंग की छड़ियाँ
फूल गेंदों के हार की लड़ियाँ
कहीं छूते अनार फुल्झादियाँ
कहीं खिलती हैं दिल की गुल्झादियाँ
कहीं उल्फत से अंखडियां लडियां
कहीं बाहें गले में है पडियां
ऐश इशरत की लुट रही धडियां
दाल मोठें मंगोड़ी और बड़ियाँ

हिंदी-उर्दू संवाद

■ कृष्ण बलदेव वैद

(संवाद-स्थल : लोदी बाग़ान के एक भुरभुरे मक़बरे की सीढ़ियां, मौसम बहार का। एक सुहानी शाम)।

उर्दू संवाद शुरू करने से पहले क्यों न इसकी कुछ सीमाएं या शर्तें तय कर लें।

हिंदी ज़रूर, वर्ना बात बिखर जायेगी या एक भद्दी, भारी और बासी बहस में बदल जायेगी।

उर्दू तो पहली शर्त तो यही कि हम इस संवाद के दौरान यूं बोलें जैसे हम हक़ीक़त में बोलती हैं।

हिंदी लेकिन यह शर्त इतनी साफ़ और सीधी नहीं जितनी सुनायी देती है, क्योंकि हक़ीक़त में हम एक ही अंदाज़ और आवाज़ में नहीं बोलतीं। शहर और गांव में, हर शहर और गांव में, हर अवसर पर, हर एक के साथ हमारी आवाज़, हमारा अंदाज़, हमारा मुहावरा, हमारी शब्दावली- ये सभी एक से कहां होते हैं।

उर्दू तुम तो छूटते ही बारीक़ियों में बह गयीं, मैं सिर्फ यह कहना चाहती थी कि मैं अपनी बात में फ़ारसी और अरबी के बोझिल लफ़्ज़ों से परहेज़ करूं, तुम संस्कृत के वैसे ही लफ़्ज़ों से।

हिंदी मुझे मंजूर है। वैसे जो लेखक हमारे इस संवाद की कल्पना और रचना कर रहा है। वह अपने काम में यह परहेज़ नहीं करता। कहता है, मैं अपने आपको और अपनी भाषा को किसी बाहरी बंधन में क्यों बांधू! कहता है, अगर फ़ारसी, अरबी या संस्कृत का कोई लफ़्ज़ मुझे ठीक बजता सुनायी देता है और मेरी बात को खूबी और खूबसूरती से पेश करने में मेरी मदद करता है तो मैं उसको इस्तेमाल क्यों न करूं!

उर्दू उसका यह कहना बेजा तो नहीं लेकिन उस पर यह आरोप तो लगाया ही जाता है कि वह अपने काम में, हिंदी के आम पाठक की परवाह न करते हुए, अक़सर उर्दू, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, और पंजाबी के ऐसे-ऐसे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल कर जाता है जो हिंदी के आम पाठक के लिए कठिनाई पैदा कर सकते हैं।

हिंदी और वह इस इलज़ाम के जवाब में दो बातें कहता है। पहली यह कि आम पाठक की दुहाई देने वाले आम पाठक को नहीं जानते, उसके साथ अन्याय करते हैं, उसकी समझबूझ की प्रखरता को नहीं जानते, उसके बहाने अपने उल्लू सीधे करते रहते हैं, अपनी कमज़ोरियों को छिपाते फिरते हैं। दूसरी दलील वह यह देता है कि लेखक का एक बड़ा मक़सद लोगों की भाषा को बेहतर बनाना होता है और वह इस मक़सद में कामयाब तभी हो सकता है जब वह अपनी भाषा के दरवाज़े उन भाषाओं के लिए खुले रखे जो उसकी भाषा के निकट रही हैं और जो उसकी भाषा को और ऊर्जा दे सकती हैं।

उर्दू वह तो यह भी कहता है और ठीक ही कहता है, कि उर्दू को भी हिंदी और संस्कृत के शब्दों और स्वरों को खुले मन से मंजूर करना चाहिए।

हिंदी असल में तुम्हें और मुझे एक दूसरी से परहेज़ नहीं है, अगर है तो इसका इलज़ाम उन लोगों को दिया जायेगा जो अपने राजनैतिक और तथाकथित मज़हबी मक़सद के लिए हमारा नाजायज़ और बेईमान उपयोग करते रहते हैं।

उर्दू या उन हालात को जो अंग्रेज़ों ने अपने राज के दौरान जान-बूझकर पैदा कर दिये और जिन्हें हम आज़ादी के बाद भी बदल न सके।

हिंदी ठीक, बिल्कुल ठीक कह रही हो। तो अब अपने इस संवाद की दूसरी कुछ शर्तों की बात करें तो मैं चाहूंगी कि हम इस बहस में न उलझें कि हम एक हैं या दो।

उर्दू इस बहस को ज़बानदानों के लिए ही छोड़ दें तो बेहतर होगा।

हिंदी और न ही इस बहस में उलझें कि हम दोनों में से बड़ी कौन है-उम्र में या अक़्ल में।

उर्दू और न ही इस चक्कर में पड़ें कि हम बहनें हैं या सिर्फ़ सहेलियां। यह ही मान लेना क़ाफी होगा कि हम एक ही खानदान की हैं।

हिंदी और यह मान लेना क़ाफी ही नहीं ज़रूरी भी होगा कि हम एक दूसरी को समझ सकती हैं, सराह सकती हैं, समृद्ध कर सकती हैं, प्यार कर सकती हैं, कि हम एक दूसरी से बरतर या कमतर नहीं, कि आवाज़ और अंदाज़

के लिहाज़ से हम अगर भिन्न हैं तो यह अच्छा ही है- हमारे लिए भी और हमें लिखने और बोलने वालों के लिए भी।

उर्दू और तुम्हारी इसी बात से एक और शर्त उभरती दिखायी देती है कि हम इस संवाद के दौरान कट्टरपंथी तेवर हरगिज़-हरगिज़ नहीं अपनायेंगी।

हिंदी और इसके लिए यह ज़रूरी है कि हम यह न भूलें कि हम ग़ैर नहीं, कि हम एक दूसरी की नीयत पर शक न करें, कि हम शाना-ब-शाना चल और मचल सकती हैं।

उर्दू और इसके लिए ज़रूरी है कि हम पीछे की तरफ़ कम देखें, आगे की तरफ़ ज़्यादा। एक गाना हुआ करता था : मुड़-मुड़ के न देख मुड़ मुड़ के!

हिंदी मुझे तुम्हारा विनोद जिसे तुम मज़ाक कहती हो बहुत पसंद है।

उर्दू उसकी तुम्हारे मिजाज़ में भी कोई कमी नहीं।

हिंदी लेकिन गुरु गंभीर मुद्रा मेरे चेहरे पर गढ़ दी गयी है। मैं तुम्हारी मदद से उस से छुटकारा पा लेना चाहती हूं।

उर्दू और मैं तुम्हारी मदद से अपनी एक लत से।

हिंदी किस लत की बात कर रही हो?

उर्दू चटख़ारे लेने की लत से।

हिंदी बस इस संवाद के दौरान भी और वैसे भी हमारा रुख़ यही रहे तो हम उस खाई को पाट सकेंगी जो हमारे बीच खोद दी गयी है। हमें अपनी ख़ामियों को छिपाना नहीं और अपनी खूबियों पर ज़्यादा इतराना नहीं। हमें हीनताबोध से भी बचना है, बरतरीयताबोध से भी

उर्दू बरतरीयता बोध! खूब! यह क्या इख़्तरा है!

हिंदी इख़्तरा! मैं इस शब्द को शब्दकोश में देख लूंगी।

उर्दू और अगर वहां यह न मिला तो?

हिंदी तो इसका मतलब तुमसे पूछ लूंगी। या उस लेखक से जो यह संवाद रच रहा है क्योंकि वह हिंदी में उर्दू से ही आया था, किसी ज़माने में, और उसका मानना है कि हिंदी और उर्दू के शब्दकोश हम दोनों को एक दूसरी के क़रीब लाने में बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

उर्दू काश कि हम दोनों को लिखने, पढ़ने, बोलने वाले सभी इतने उदार होते!

हिंदी अच्छा, अब यह भी तय कर लें कि हम राजनीति को इस संवाद से बाहर रखेंगे।

उर्दू इस शर्त को निभाना आसान नहीं होगा।

हिंदी ठीक कहती हो।

उर्दू वैसे जिन लोगों ने अपने राजनीतिक मक़सदों के लिए हमारा दुरुपयोग किया है और हमारे बीच फूट डाली है उनका पर्दा तो हमें फ़ाश करना ही चाहिए। लेकिन इसमें ज़्यादा वक़्त बरबाद न ही करें तो बेहतर होगा क्योंकि वह पर्दा कई बार फ़ाश किया जा चुका है

हिंदी ठीक कहती हो।

उर्दू ऐसे लोगों ने ही तुम्हें हिन्दुओं की और मुझे मुसलमानों की ज़बान मान लेने के ग़लत और ख़तरनाक नज़रिये का प्रचार कर हमें एक दूसरे से दूर धकेल देने की कोशिश की है।

हिंदी इस नज़रिये की बुनियाद हमारे अंग्रेज़ हाकिमों ने ही डाली थी। आज़ादी के बाद तो इसका अंत हो जाना चाहिए था।

उर्दू लेकिन वह हुआ नहीं। आज़ादी के बाद कुछ लोगों ने तो भारत में उर्दू का ही अंत कर देना चाहा- उर्दू को मदरसों में धकेल कर, उसे मुसलमानों की ज़बान ठहरा कर, ग़लत-शिक्षा नीतियों के तहत।

हिंदी इस पर भी हमारे बीच बात होनी चाहिए।

उर्दू ज़रूर होनी चाहिए लेकिन हमारे इस संवाद के मरकज़ में अदब ही रहेगा।

हिंदी वह तो रहेगा लेकिन उसके हाशिये पर दूसरे विषय भी रहेंगे।

उर्दू और अब तो हाशिये की अहमियत मरकज़ की अहमियत से भी ज़्यादा मान ली गयी है।

हिंदी हमारे इस संवाद को रचने वाला भी तो एक हाशियानशीन ही है।

उर्दू मैं तो उसे गोशानशीन ही समझती रही।

हिंदी उसका गोशा हाशिये पर ही है।

उर्दू इसीलिए उसके कुछ हरीफ़ उसे एक 'ख़ालिस' लेखक कह कर समझते हैं कि उन्होंने उसे एक गाली दे दी है।

हिंदी और वह इस गाली को फूल की तरह ले लेता है।

उर्दू वह हम दोनों के बीच इस संवाद में और इसके बाहर काई भेदभाव नहीं करेगा क्योंकि वह हम दोनों से यकसां प्यार करता है, और हम में से किसी एक को दूसरी से कमतर या बरतर नहीं समझता।

हिंदी और अपनी हिंदी के सभी दरवाज़े उर्दू के लिए खुले रखता है और चाहता है कि उर्दू के लेखक भी अपनी उर्दू के सभी दरवाज़े हिंदी के लिए खुले रखें। कहता है उर्दू और हिंदी के सभी लेखकों को यही करना चाहिए।

उर्दू क्योंकि ऐसा करने से वे दोनों ज़बानों को और पुरज़ोर बना सकेंगे।

हिंदी कहता है कि दोनों ज़बानें एक दूसरी के घर को अपना घर समझेंगी तो दोनों के घरों में रौनक रहेगी, रोशनी रहेगी, मस्ती रहेगी।

उर्दू कहता है उर्दू और हिंदी की आपसी खाई को इसी तरह एक बाग़ में बदला जा सकता है।

हिंदी कहता है हिंदी की लय को उर्दू से कोई ख़तरा नहीं होना चाहिए।

उर्दू मानता है उर्दू के आहंग और रंग को हिंदी से कोई ख़तरा नहीं होना चाहिए।

हिंदी लेकिन अब हमें इस गरदान को और आगे नहीं बढ़ाना चाहिए वरना उस पर आरोप लगाया जायेगा कि वह हम से अपना गुणगान करवा रहा है।

उर्दू अच्छा तो यह बताओ कि तुम्हें मेरी बात समझने में कोई दिक़्क़त हुई?

हिंदी यही सवाल मैं तुम से पूछूं तो?

उर्दू तो मेरा जवाब होगा, हरगिज़ नहीं।

हिंदी तो मेरा जवाब भी यही है। लेकिन कहने वाले कहेंगे कि हमारे लेखक ने जानबूझ कर इस संवाद को आसान और सहज बना दिया है, अपनी इस दलील की पुष्टि के लिए कि हम दोनों के बीच ऐसी कोई दूरी नहीं जिसे दूर न किया जा सके।

उर्दू ऐसे लोगों की परवाह हमारा लेखक नहीं करता, हम क्यों करें? और फिर अगर उसने अपनी दलील की ताईद के लिए हमारे इस संवाद के ज़रिये यह साबित करने की कोशिश की है कि हमारे बीच संवाद मुमकिन है तो उस पर किसी को एतराज़ क्यों हो?

हिंदी यह एतराज़ उन्हीं लोगों को होगा जो चाहते हैं कि हमारी आपसी दूरी बनी रहे या बढ़ती चली जाये।

उर्दू ऐसे लोगों की ज़हनियत को भी हमें बदलना होगा।

हिंदी और उनकी नीयत को भी।

उर्दू ज़हनियत और नीयत का आपसी रिश्ता बहुत क़रीबी।

हिंदी इस रिश्ते को समझे और समझाये बग़ैर उनमें कोई परिवर्तन नामुमकिन।

उर्दू बिल्कुल बजा।

हिंदी सुनो, दबी ज़बान से एक बात कहूं अगर बुरा न मानो तो।

उर्दू दबी ज़बान से नहीं, खुल कर कहो, मैं वचन देती हूं बुरा नहीं मानूंगी।

हिंदी उर्दू के शायर हिंदी के शायरों को हीन क्यों समझते हैं, उनका मज़ाक क्यों उड़ाते रहते हैं?

उर्दू तुम्हारा इशारा शायद उर्दू के उन शायरों की तरफ़ है जो समझते हैं कि ग़ज़ल में ही अज़ीम शायरी मुमकिन है और अज़ीम ग़ज़ल उर्दू में ही मुमकिन है उर्दू ग़ज़ल की ख़ूबियों और ख़ासियतों और ताक़तों से किसी को इनकार नहीं, हिंदी के शायरों को भी नहीं, लेकिन अब कौन नहीं जानता कि ग़ज़ल के बाहर भी अज़ीम शायरी मुमकिन है, उर्दू में भी, हिंदी में भी, दीगर ज़बानों में भी। हिंदी को हीन वही कहेंगे जो उसके अदब को नहीं जानते। और ऐसे लोगों की उर्दू में कोई कमी नहीं।

हिंदी उर्दू वालों की इस लाइल्मी को दूर करने की ज़रूरत है।

उर्दू बहुत सख़्त ज़रूरत है। हिंदी में पिछले कई बरसों से उर्दू के सभी बड़े शायरों का कलाम देवनागरी लिपि में मौजूद है। अगर हिंदी के सभी बड़े शायरों का काम भी फ़ारसी लिपि में मिलने लगे तो उर्दू वालों का यही लाइल्मी कम हो सकती है।

हिंदी तो यह काम हो क्यों नहीं रहा?

उर्दू कई कारण होंगे। सबसे बड़ा कारण तो यही कि उर्दू में प्रकाशन की हालत उतनी अच्छी नहीं जितनी कि हिंदी में।

हिंदी इस समस्या पर फिर कभी बात करेंगे।

उर्दू हां, फिलहाल तो इतना ही कि हर ज़बान में हर कमाल मुमकिन नहीं।

हिंदी कोई ज़बान ऐसी नहीं जिसमें कई कमाल मुमकिन न हों।

उर्दू हर ज़बान में नये कमाल भी मुमकिन हैं।

हिंदी हो सकता है हिंदी में भी अज़ीम ग़ज़ल मुमकिन हो जाये।

उर्दू हो सकता है उर्दू में भी अज़ीम आज़ाद नज़्म मुमकिन हो जाये।

हिंदी अगर ये दोनों ज़बानें खुले दिल और दिमाग़ से आपस में मिलना-जुलना और रसना-बसना शुरू कर दें तो बहुत कुछ मुमकिन है।

उर्दू हमारे संवाद की यह कड़ी इसी नुक़्ते पर रोक दी जाये तो कैसा रहे?

हिंदी तो अगली कड़ी की शुरुआत इसी नुक़्ते से की जायेगी।

उर्दू आदाब!

हिंदी आदाब!

नया पथ, (जुलाई-सितंबर, 2008 से साभार)

मेरा एक सपना

■ यावर अब्बास

मैं एक बात शुरू में ही साफ कर देता हूं। मैं पाकिस्तान को पसंद करता हूं, पाकिस्तान का मतलब धारणा नहीं बल्कि पाकिस्तान की धरती, और खासकर पाकिस्तान के बाशिंदे। और ऐसा हो भी क्यों न? वे मेरे खून का, मेरी संस्कृति का और मेरी विरासत का हिस्सा हैं। वे आप से और मुझसे कैसे भिन्न हैं? क्या वे भी हमारी ही जैसी भाषा नहीं बोलते हैं, हमारे जैसे गीत नहीं गाते हैं, और सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण यह कि क्या वे भी उसी हवा में सांस नहीं लेते हैं जिस हवा में हम-आप सांस लेते हैं? कोई ऐसे पर्वत नहीं हैं जो हमें बांटते हैं। कोई सागर नहीं है जो हमें अलग करता है। सिर्फ एक अजीब द्वि-राष्ट्र सिद्धांत है जो कहता है कि हिन्दू और मुस्लिम दो अलग-अलग क़ौमें हैं। इस आसान सिद्धांत का इस्तेमाल साम्राज्यवादियों द्वारा उनके लंबे निर्धारित योजनाओं के माध्यम से उप-महाद्वीप पर अपना आधार स्थापित करने के लिए किया गया था ताकि सोवियत संघ से जो उन्हें खतरा महसूस हो रहा था उसका मुकाबला किया जा सके। याद रहे कि द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होते ही दो पूर्व सहयोगी (एक तरफ सोवियत संघ और दूसरी तरफ ब्रिटेन और अमेरिका) शीत युद्ध के दौरान दोनों एक-दूसरे के घातक दुश्मन बन गए थे। पूर्व की तरह महासंग्राम फिर से शुरू हो गया जिसमें 'संयुक्त राज्य भारत' को अस्तित्व में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी क्योंकि (1) इसे एक महा शक्तिशाली देश के रूप में स्वीकार करना उनके लिए आसान नहीं होता (2) यह सोवियत संघ के पक्ष में खड़ा हो सकता था। इसलिए यह निर्णय लिया गया कि देश का बंटवारा किया जाय और वह भी जल्दबाजी में किया जाय ताकि इतनी उथल-पुथल उत्पन्न हो कि दोनों उभरते हुए देश एक दूसरे से भिड़े रहें और आपस में दुश्मनी जारी रखने के लिए ज़रूरी हथियार साम्राज्यवादियों से खरीदते रहें। यह भी याद रहे कि युद्ध के बाद ब्रिटेन आर्थिक रूप से पूरी तरह कंगाल हो चुका था और उसकी अर्थव्यवस्था हथियार उद्योग से पुनर्जीवित करने के लिए मददगार साबित हो सकती थी। इसलिए द्वि-राष्ट्र सिद्धांत एक बड़ी धोखाधड़ी थी जो ऊपर बताए गए उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए भारत के लोगों पर लाद दी गयी। इसका भारत के लोगों की आकांक्षाओं से कोई लेना-देना नहीं था और उनसे कभी इस बाबत कोई सलाह-मशविरा भी नहीं किया गया। यहां तक कि 5 प्रतिशत से भी कम लोगों से उनकी राय ज़ाहिर करने को कहा गया और ऐसे बेतुके प्रश्न पूछे गए जैसे आप किसी से पूछें 'क्या आप अपनी पत्नी को पीटना बंद करेंगे?' देश के बंटवारे का निर्णय पहले ही उन लोगों से पूछे बिना लिया जा चुका था जिन निर्दोष लोगों ने कई लाखों की संख्या में जानें गंवाई थीं और कई-कई लाख लोग अपनी ही ज़मीन पर बेघर और शरणार्थी हो गए थे। बंटवारे ने किसी समस्या का समाधान नहीं किया बल्कि उल्टे कई समस्याएं खड़ी कर दीं जिन्हें हमें हमेशा जीना होगा और न जाने हमारी कितनी ही पीढ़ियों को जीना पड़ेगा। मेरा उन लोगों से यह कहना है जो अभी भी इस मिथक पर अडिग हैं :

अगर बांग्लादेश के निर्माण ने द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को पूरी तरह ध्वस्त नहीं कर दिया तो निश्चित तौर पर ज़मीनी तथ्य झूठे हैं। भारत में पाकिस्तान से ज़्यादा मुसलमान हैं। अगर मुस्लिम समुदाय एक अलग राष्ट्र है तो भारत के मुसलमान भारत में क्या कर रहे हैं? क्या उनको पाकिस्तान नहीं चले जाना चाहिए? यहां चढ़ने के लिए कोई पर्वत नहीं है, पार करने के लिए कोई समुद्र नहीं है सिर्फ यक़ीन करने के लिए नक्शे पर एक काल्पनिक रेखा खींची गई। नक्शे पर खींची गई कोई भी रेखा आसानी से मिटाई जा सकती है।

ठीक यही काम पूर्व युगोस्लाविया में हो रहा था। इस प्रक्रिया में वे नक्शे पर रेखा दर रेखा खींच रहे थे, सैकड़ों-हजारों निर्दोष लोगों को मार रहे थे और उनको घरों से बेघर कर रहे थे। एक भारतीय होने के नाते मैंने उनसे कहा होता कि इसका कोई फायदा नहीं। मैंने उनको बताया होता : तुम किसी भी हद तक जातिगत शुद्धिकरण (जबरन निष्कासन के लिए, जनसंहार के लिए उकसाने वाला वक्तव्य और एक भयानक अभिव्यक्ति), के नाम पर तुम अनगिनत लोगों को खदेड़ सकते हो, असंख्य मस्जिदों को ध्वस्त कर सकते हो, कई चर्चों में विस्फोट कर सकते हो, कई मंदिरों को तोड़ सकते हो लेकिन एक इंसान को किसी दूसरे धर्म-जाति के इंसान का साथ पाने से नहीं रोक पाओगे। एक जातिगत शुद्ध समाज नैतिक रूप से एक अशुद्ध समाज है। यह वह समाज है जो बौद्धिक और समाजिक रूप से दिवालिया, नीरस और उबाऊ समाज है और शुरू से ही बर्बादी के लिए शापित है।

मैं विनम्रतापूर्वक कहता हूं कि यह संस्कृतियों का समागम ही है जो किसी समाज को उसकी शक्ति प्रदान करता है। यह संस्कृतियों का समागम ही है जो भारत को मज़बूती देती है। शास्त्रीय संगीत और उर्दू भाषा भारत के दो ऐसे शीर्ष गौरव हैं जो सांस्कृतिक समागम का ही परिणाम हैं। वह क्या है जो उत्तर भारत के शास्त्रीय संगीत को एक अनोखा स्वरूप प्रदान करता

है? बैजू बावरा मियां तानसेन से बेहतर गाने का प्रयास कर रहे हैं, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर उस्ताद अब्दुल करीम खान के साथ सुर मिला रहे हैं, पंडित रवि शंकर हैं जो उस्ताद अलाउद्दीन खां के कदमों में बैठ कर सितार सीख रहे हैं, बिरजू महाराज हैं जो उस्ताद अल्ला रक्खा की धुनों पर थिरक रहे हैं, पंडित हरि प्रसाद चौरसिया उस्ताद ज़ाकिर हुसैन के साथ जुगलबंदी कर रहे हैं और उस्ताद बिस्मिल्ला खां हैं जो बनारस के विश्वनाथ मंदिर में शहनाई बजा रहे हैं।

यह फिर से संस्कृतियों का समागम ही है जो उर्दू भाषा को संपन्नता प्रदान करती है -पंडित रतन नाथ सरशार और मौलाना अब्दुल हलीम शरार की भाषा, मीर बाबर अली **अनीस** और पंडित दया शंकर कौल **नसीम** की भाषा, मिर्ज़ा असद उल्लाह खान **ग़ालिब** और मुंशी हरगोपाल **तुफ़्ता** की भाषा, मुंशी प्रेमचंद और कुर्रतुल ऐन हैदर की भाषा, सआदत हसन मंटो और राजेन्दर सिंह बेदी की भाषा, इस्मत चुग़ताई और कृष्ण चंदर की भाषा, अल्लामा इक़बाल और पंडित बृज नारायण **चकबस्त** की भाषा, रघुपति सहाय **फिराक़** और शब्बीर हसन **जोश** की भाषा, फैज़ अहमद **फ़ैज़** और पंडित आनन्द नारायण **मुल्ला** की भाषा, मौलाना अबुल कलाम **आज़ाद** और पंडित जवाहर लाल **नेहरू** की भाषा, गोपीचंद नारंग और मुशीरुल हसन की भाषा, अहमद **फ़राज़** और पंडित **गुलज़ार** जुत्सी की भाषा, चमन लाल चमन और यावर अब्बास की भाषा।

हमने हिन्दुस्तान में एक अनूठी तहज़ीब अपनायी है जिसका सीधा परिणाम हजारों सालों से हिन्दू-मुसलमानों के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के रूप में दिखाई पड़ता है। मैं तब के राजसी राज्य बुन्देलखंड के चरखारी में पैदा हुआ था जो क्षेत्र अपने विख्यात हीरो आल्हा और ऊदल के लिए प्रसिद्ध है। यह एक हिन्दू राज्य था जिसमें मेरे दादा जी जो कि एक मुस्लिम थे, उस राज्य के दीवान या प्रधान मंत्री थे। मेरी दिवंगत पत्नी हामिदा उस समय के लन्दन के उच्चायुक्त डॉ. एल. एम. सिंघवी के घर एक ही थे (इत्तफाक़ से दोनों की मृत्यु शनिवार, 6 अक्टूबर 2007 को एक ही दिन हुई)। मेरी पत्नी उदयपुर के प्रमुख हिन्दू राज्य से आईं थीं जहां उनके पिता मुख्य न्यायाधीश थे। मैं बचपन से ही रामायण और महाभारत की कहानियां सुनता आया था और रामलीला का सालाना मंचन मेरी ज्वलंत और प्रिय यादों में से एक है। उसी प्रकार मुस्लिम महीने के मोहर्रम के शोक के 10 दिनों के दौरान हमारे हिन्दू महाराजा, जिनका अपना एक सुन्दर ताज़िया था, हमारे साथ ताज़िया जुलूस में शामिल होकर नंगे पांव चलते थे।

संस्कृतियों के आदान-प्रदान की इस धनी परंपरा को पूरे भारतवर्ष में हज़ारों बार होली, बैशाखी, ईद और क्रिसमस जैसे त्योहारों के दौरान दोहराया गया जब हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई एक-दूसरे के त्योहारों व जश्नों में शामिल हुए।

इन प्राकृतिक और लगातार चलने वाले आदान-प्रदान को बंटवारे और उसके बाद घटी प्रमुख घटनाओं ने करारा झटका दिया। लेकिन इससे यह हक़ीकत नहीं बदली कि हम अभी भी वही हैं और सन् 1947 का भयानक पागलपन भी हमारी हज़ारों साल पुरानी विरासत को नहीं मिटा सका। बंटवारे को स्वीकार करके हमने गलती की। अगर हम अपने दिलों में उस बंटवारे को स्वीकार कर लें और एक झूठे सिद्धांत को सही मानकर प्रतिक्रिया देंगे तो हम एक और बड़ी गलती कर बैठेंगे। बाप के गुनाहों की बुरी छाया बच्चों पर नहीं पड़नी चाहिए।

हमारे देश में कुछ लोग निर्दोष लोगों को निशाना बनाकर यहां के माहौल में ज़हर घोलने का काम कर रहे हैं, देश को बड़ा नुकसान पहुंचा रहे हैं और उस भारत माता की साफ-सुन्दर छवि को बिगाड़ने की कोशिश कर रहे हैं जिसकी हम सब संतान हैं। जिन निर्दोष लोगों को निशाना बनाया जा रहा है उनका कुसूर सिर्फ इतना है कि वे किसी आस्था को खुलेआम स्वीकार करते हैं। हर स्वतंत्रता दिवस जिसकी नींव हमने 15 अगस्त 1947 को रखी, हम खुद को अपने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के आदर्शों के प्रति पुनः समर्पित करें, हम वह सब करें जो हम सभी कर सकते हैं और देख सकें कि आने वाले दिनों में हिटलर और मुसोलिनी के घटिया रूप न देखने पड़ें।

भारत के महान और धर्मनिरपेक्ष संविधान ने हमें प्रेरणा दी है कि हम भारत का निर्माण इसके सभी नागरिकों की बराबरी के आधार पर करें चाहे वे किसी भी जाति, मज़हब, लिंग और वर्ण के हों। हम सिर्फ इतना करें और उस दिन का इन्तज़ार करें जब ये जाति, मज़हब, लिंग और वर्ण रूपी दीवारें गिर जाएंगी, जैसा कि मुझे यक़ीन है कि ये दीवारें ज़रूर गिरेंगी, इसलिए कि मार्टिन लूथर किंग की भांति मेरा भी एक सपना है।

मेरा सपना है कि मेरी धरती के लोग बिना किसी व्यवधान के इस धरती पर इधर से उधर तक आ-जा सकेंगे। मेरा सपना है कि डर और संदेह के ईंट और मोर्टार से हमारे दिलो-दिमाग पर खड़ी की गई हमारी स्वयं की बर्लिन की दीवार की एक-एक ईंट प्रेम के परिश्रम और आपसी विश्वास से अलग कर दी जाएंगी।

मेरा सपना है।

मेरा सपना है कि मेरे लोगों की पीठ पर से ग़रीबी का बोझ उठा लिया जाएगा।

मेरा सपना है कि हमारे राजनीतिक ढांचे से जातिवाद का अभिशाप और भ्रष्टाचार का कैंसर मिटा लिया जाएगा।

मेरा सपना है कि हमारे देश के प्रत्येक लड़के-लड़की के पास अपने बचपन का भरपूर आनन्द लेने के लिए समय और स्थान होगा।

मेरा सपना है कि पूर्व में विभाजित और पराये हो चुके हमारे लोग फिर से एक साथ आएंगे और अपनी विशाल प्रतिभा के बल पर महान गौरव प्राप्त करेंगे।

मेरा सपना है कि नफ़रत पर प्यार की जीत होगी और गांधी जी की ज़िन्दगी सार्थक बन कर रहेगी

मेरा एक सपना है!

हरे बाँस की बाँसुरी

■ उमाकांत मालवीय

'कलमुँही, भागजली तूने ऐसा कौन सा जोग जप-तप किया है कि प्यारे के अरुणाभ अधरों से लगी रहती है?' व्रज वनिताएँ वेणु को कोसती हैं। 'मेरे भाग्य से कुढ़ने जलने वालियों कभी यह तो देखा होता कि मैंने खुद को खुदी से किस कदर खाली कर दिया है, सारा तन छिदवा डाला है, तब कहीं जाकर साँवरे के ओंठ चूम सकी हूँ।' वेणु के सन्दर्भ के माध्यम से सम्पूर्ण अहं को विसर्जित कर प्रिय को पाने की बात स्वामी रामतीर्थ ने कही है। कदाचित् ऐसी एक बाँसुरी और थी, जिसे ज़माने को जानना चाहिए था, लेकिन काल के गर्द गुबार के नीचे दबी-दबी जो आज भी अपने माधव के गुन टेर रही है, हम तक उसकी टेर पहुंचे न पहुंचे क्या फर्क पड़ता है? जो उस टेर का संबोध्य है, जो उसका गन्तव्य है, उसके लाल मुलायम ओंठों से आज भी मुरली बन कर लगी हुई है, ऐसे नसीबों वाली है, अठारहवीं शती में जनमी मुस्लिम भक्त कवियित्री नसीवाँ।

'हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश- अपयश विधि हाथ' गोसाईं जी का कथन कितना चरितार्थ हुआ है नसीबाँ के सन्दर्भ में? नसीबाँ को किसी प्रकार की लोकेषणा थी, ऐसा मैं नहीं कहता। यदि आज हम नसीबाँ को नहीं जानते तो यह हमारी कमनसीबी है, इससे उसका क्या आता जाता है। राजस्थान कोकिला मीर की टेर में उसकी टेर कुछ इस तरह समा गयी कि हम अलग से उसकी कोई शिनाख्त नहीं कर पाये।

राजस्थान की बुलबुल नसीबाँ का जन्म राजस्थान के जालौर जिले की मीन-माल तहसील के अन्तर्गत सेवाड़ा नामक ग्राम में अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। उसके जीवनवृत्त के बारे में इससे अधिक कुछ नहीं मिलता।

मरु प्रदेश के निचाट तपते हुए टीलों-शिखरों पर जब साँवले मेघ घिरते हैं। जब रिमझिम के नूपुर थिरक उठते हैं तब नसीवाँ के मन में क्या उमड़ा, क्या घुमड़ा, क्या उमसा, क्या घिरा, क्या झुका और क्या बरसा इसका कोई फोटोग्राफ प्रस्तुत कर सकना तो सम्भव नहीं है, लेकिन एक झलक उसका यह दोहा अवश्य देता है-

आंसू मोती परोय हेत मोक्लूँ हार,
मरुधर आयो मेहूलो रसिता धरै पधार।

प्रियतम! आँसुओं के मोती पिरो कर गजरा भेज रही हूँ। सूखे मरुस्थल पर मेघ बरस रहा है। लेकिन मेरे मन के मेघ! तेरी अनुपस्थिति में यह सावन कितना सूखा है, कितना फीका है। जीवन के फुलबगिया के रसिक भ्रमर घर आओ। यहाँ नसीबाँ मूर्तिमती प्रतीक्षा-महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत होती है।

कर्नल टाड अपने 'अनल्स ऑफ राजस्थान' में लिखते हैं, यूरोप को एक थर्मापोली पर नाज है लेकिन राजस्थान के चप्पे-चप्पे में एक नहीं अनेक थर्मापोली स्पन्दित हैं। रक्त सिंचिता धरा ने अपनी कोख में नसीबाँ जैसे रस निर्झरों को भी छिपा रक्खा था, इस गोपन को कब किसने जाना।

नसीबाँ के बड़े भाई जीवा जी ढाढी स्वयं अपने समय के जाने माने कवि थे, अपने क्षेत्र में उनके काव्यपाठ की धाक थी। नसीबाँ ने मुस्लिम परिवार में जन्म लिया था, वह रोजे और नमाज़ के साथ-साथ हिन्दू देवी-देवताओं का भी धूप-ध्यान, करती थी। उनके प्रति भी उसके मन में उतनी ही आस्था, श्रद्धा और निष्ठा थी। उसने किसी पोशल (पाठशाला) में जाकर विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं की, लेकिन उसने 'ढाई आखर' के बल पर अपने प्राप्तव्य को पा लिया था। उसकी अनूठी सूझ, सरल तरल, स्निग्ध और रिजु अभिव्यक्तियाँ निराली थीं। भगवान कृष्ण के प्रति भाव विभोर हो कर उसने कितने पद रचे हैं इसका पूरा-पूरा लेखा-जोखा अभी नहीं किया जा सका, लेकिन जो भी उपलब्ध हुए हैं, वे भाव प्रवणता में अपनी अद्वितीयता स्थापित करते हैं।

जन्माष्टमी पर वह उपवास रखती थी और अपने प्रिय प्रभु कृष्ण का गुणगान करती अघाती न थी। कृष्ण भक्ति परम्परा में राजस्थानी काव्य में उसका नाम आदर से लिया जाना चाहिये। यह हमारा उस पर कोई उपकार नहीं होगा, यह उसका अर्जन है, उसका प्राप्तव्य है, जो उसे मिलना चाहिये यद्यपि वह उसकी मुखापेक्षी नहीं है। हमारी मान्यता या उपेक्षा से अपने प्रिय के लिए उसकी टेर की गहनता शिथिल नहीं होगी।

कानूड़ो रमवा आयो रे।
बाँसली वाला रमवा आयो रे।
आ तो रमत काना कामण गारी
गूग राव जाड़े गूंदरे गरधारी,
म्हारा गांम मां गोक्ल बसायो रे
कानूड़ो रमवा आयो रे।
जसोदा जायो रे
बाँसली वाली रमवा आयो रे
दी जैमादू लाडूला खवादूं

म्हारा कुंवर कान ने लाडसूं रमादूं
वलोणोकरण दे, फेरूं उखायो रे
कानूड़ो रमवा आयो रे।

कृष्ण मेरे आँगन में खेलने आया है। मेरे कृष्ण का यह खेल कैसा प्यारा, कैसा अलौकिक है। इस छवि को निहार कर पारलौकिक सुख होता है। गाँव के आँगन-आँगन गोपाल की पैजनिया के घुंघरू झनक रहे हैं लगता है स्वयं गोकुल ही मेरे गाँव में आया है। आ मेरे गोपाल! आ मेरे कान्हा! तुझे दही जिमाऊं। आ मेरे गोपाल! आ मेरे कान्हा! तुझे लड्डू खिलाऊं। जरा कल से बैठ, दही मथने तो दे, छाछ फेरने तो दे। तुझे मक्खन दूँगी। कन्हैया! तुझे मेरी कसम है, सच तुझे मेरी सौगंध है, मेरे प्राण! तुझे मेरी शपथ है; रूठना नहीं तेरा रूठना मुझसे झेला नहीं जायेगा।

कृष्ण भला नसीबाँ से रूठेगा? वह रूठ कर चैन से रह पायेगा? रूठ के देख ले। उसके प्रति प्रगाढ़ भक्ति है दासी नसीबाँ के हृदय में। उसे अपने कान्हा पर अटूट भरोसा है। वह गद्‌गद् होकर टेरती है-

हे रे भरोसो भारी ओ गिरधारी थारो।
हे भरोसे भारी
मेड़ते तो मां मीरा अे जलमी,
हाथ मां वीणा धारी ओ गिरधर
थारो है भरोसो भारी।
भीलड़ी रांएंठा बोर है आरोगिया,
द्रोपदा री चीर बधारी अे गिरधारी
थारो है भरोसो भारी।
मिनकी रा बछिया बचाया अे बाप जी।
बलते निमाड़े रखवा रखवाला अे गिरधारी
थारो है भरोसा भारी
करमाँ रो खीचड़ खायो रे खामदाँ
वार वार जाऊँ बरिहारी अे गिरधारी
थारो है भरोसो भारी
अेड़ा ड़ा काँम करो रे नसीबाँ रा
म्हारी श्यांन है थारी अे गिरधारी
थारो है भरोसो भारी।

गिरधर! तुम पर मुझे याने तेरी नसीबाँ को भरोसा है। भक्तों के लिए तुम दौड़े-दौड़े आते हो नटवर! तेरे लिए मीरा हाथ में वीणा धारे कहाँ-कहाँ नहीं भटकी। कहाँ-कहाँ किस-किस तरह तुम्हें नहीं टेरा। तुम्हारी दृष्टि में सभी समान हैं। कितने अच्छे हो तुम मेरे घनश्याम! रामावतार में तुमने शबरी के झूठे बेर खाये। करमाँ जाटनी के यहाँ बाजरे का खीच (खिचड़ी) खाया धधकती आग में बिल्ली के बच्चों पर आँच तक नहीं आयी। गरीब परवर! तुम ऐसे ही नसीबाँ की बिगड़ी बनाओ। अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो मेरा क्या बिगड़ेगा? मैं तो तुम्हारी भक्त हूँ। भक्त की लाज यदि भगवान नहीं रखेगा तो और कौन रखेगा? भक्त कवियत्री नसीबाँ के नसीब में परमात्मा ने भक्ति ही लिखी है, इसे वह अपने नसीब का बड़प्पन मानती है। भाव विभोर हो कर विह्वलता की चरम स्थिति में पहुँच कर वह कहती है-

नसीबाँ नसीब में भगती दाखी
भूआ विधी लाज रखाई जो मालकों!
उठारा अेसान मैं कीकरा उतारूँ
कठै कठै बाँटू बधाई,
बधाई ओ मालकों!

मेरी भुआ (बुआ) विधाता ने मेरे नसीब में गिरधर का संकीर्तन लिखकर मुझ पर बड़ा उपकार व एहसान किया है। उस एहसान को कैसे चुकाऊँ? इस उपकार से कैसे उऋण होऊँ? कहाँ-कहाँ जाकर किसे-किसे कितनी बधाई बाँटूँ?

जहाँ तक मैंने देखा, पढ़ा और सुना है, भक्तों ने भगवान से बराबर कहा है कि तेरे सिवा मेरा कौन है? तुम्हारी शरण छोड़कर कहाँ जाऊँ? और जाने क्या-क्या किसी ने नसीबाँ की तरह यह नहीं कहा, 'रूठोगे? रूठो, रूठ कर जाओगे कहाँ? रूठ कर देख लो, नसीबाँ के सिवा तुम्हारा है कौन? नसीबाँ के नसीब में तुम और तुम्हारे नसीब में नसीबाँ के अतिरिक्त और कौन है? हम दोनों का एक दूसरे से रूठने से गुज़ारा नहीं होने का, आओ परस्पर मिल बैठें।' इस धरातल पर केवल मलूक ही नज़र आते हैं, जब वे घोषित करते हैं-

माला जपौं न तप करों नहिं गाऊँ हरिनाम
मेरा सांई मुझको भजता मैं पायो विश्राम।

नसीबाँ के पति ईसव जी अजमेर शरीफ के ख्वाजा साहब मुईनुद्दीन चिश्ती के परम भक्त थे। एक बार वे अपने साथ ख्वाजा साहब की पाक दरगाह पर नसीबाँ को भी ले गये। इस जियारत से नसीबाँ धन्य हो गयी। प्रभु के प्रिय जन, उन प्रियजनों से चाहे प्रभु जिस सन्दर्भ में निकटतर होते हों, उस निकटता को पाकर उनमें जो कृतार्थता, कृतज्ञता, धन्यता उगती है, वह उनमें पहले से प्रस्तुत भक्ति रस, प्रेमरस को प्रगाढ़तर करती है और उसके आलोक गंध से गत आगत सम्पूर्ण परिवेश महमह कर उजागर हो जाता है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती सूफी सन्त के प्रति नसीवाँ के अन्तस से एक श्रद्धा श्रोत उमड़ पड़ता है-

गरीब नवाज रा गावूं अे गीतड़ा
पगत्या में पलक बिछाऊँ अे बाप जी।
विध विध नाम बखाणूं।।
इराण धरा सूं आप रे पधारिया'
पगल्यां री प्रीति पिछाणूं अे बाप जी।
विध विध परचा खाणूं।
इस पहाड़ में प्रगट्याजे पीरां
हजरत अली वंश राजाया।
कोउ जिरात आवे जात रूँ
थारी अप्रबल याया रे पीरां
विध विध बखाणूं।।

नसीबाँ द्वारा अभिव्यक्त यह भक्तिप्रवण पद, गरीबपरवर गरीबनवाज ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के वंश, देश और जन्म स्थान का पता देता है। नसीबाँ कहती है; मैं गरीबनवाज की उदारता के गीत गाती रहूँ, मेरी वाणी रुके नहीं, मेरे भीतर का गीत थमे नहीं। गरीबों का प्रिय पीर ईरान देश से भारत आया। हजरत मुहम्मद के दौहित्र हजरत अली के वंशधर ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का पवित्र पुनीत नाम लेकर धन्य हो गयी; मैं उनके गुणगान से निहाल हो गयी। उनके वरदान, उनकी कृपा अनुकम्पा, उनके अनुग्रह अप्रबल (अद्‌भुत बलशाली) है।

आज से लगभग कोई साढ़े सात सौ वर्ष पूर्व ख्वाजा साहब पहली बार अजयमेरू (अजमेर) पधारे थे। उन दिनों भरत भूमि पर पृथ्वीराज चौहान का शासन था। कुछ समय तक अजमेर में निवास कर ख्वाजा साहब फिर गजनी लौट गये। जब शाहबुद्दीन गौरी का दिल्ली में शासन हो गया तो ख्वाजा साहब दूसरी बार अजमेर शरीफ आये। इस बार भारत में उनका प्रवास लगभग आठ वर्ष का था। इसके पश्चात् वे बगदाद लौट गये। पुनः 6 वर्ष बाद वे अजमेर लौट आये। उन्होंने सुलतान गयासुद्दीन इल्तुतमिश को धर्म शिक्षा दी। कवियित्री नसीबाँ ने अपने पदों में इस ऐतिहासिक तथ्य का संकेत दिया है। सूफी सन्त ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की धार्मिक उदारता का बरदान भी उसने अपने पदों में किया है।

कुराण पुराण वेद री पोथी
नजर पीरां इक सारा
गरीब नवाज रे घर कोई जावो,
गरीब पीरां ने प्यारा।

गरीब परवर, गरीब नवाज सूफी सन्त ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दृष्टि में कुरान पुरान वेद सब कुछ एक हैं। उनकी देहरी पर कोई जाये हिन्दू हो या मुसलमान उसे समान रूप से प्यार मिलेगा। गरीब परवर ख्वाजा पीर हरेगा।

कथनी और करनी की एकरूपता पर सभी सन्तों ने बल दिया है। कदाचित् यही एक ऐसा आचरण बिन्दु है, जिसमें सभी सन्त एकमत हैं। कथनी और करनी का अन्तर आज की विभीषिका के मूल में है। नसीबाँ कहती है-

अवीडे मार गतमत हाल बावला,
कथणी सोई करणी
आलम री नजरां रहे न दानी,
करणी सो ही भरणी।

कुपथ पर मत जाओ, जो कहो वही करो। दुनिया की नज़रों से गुनाह भले ही छिप जाय पर परवरदिगार के दरबार में सब बातें एक-एक कर तार-तार अयाँ हो जाती हैं। नसीबाँ के व्यापक दृष्टिकोण के लिये कदाचित् एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

'हेदू करे न करोलिया नोरत म्है करों हां रोजा' हिन्दू व्रत उपवास करते हैं, हम रोजा रखते हैं। अल्लाह खुदा, राम रहीम ईश्वर का अनुग्रह पाने, उन्हें रिझाने का उद्देश्य तो एक ही है। हमारी मंजिल तो एक ही है। नसीवाँ ने अपने स्वरों में अपने मन प्राण को पिरोया है। उसके पदों में ऐसी कुछ महक है कि जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को अपनी ओर मुग्ध एवं आकर्षित करने में सक्षम है। महिलाओं की हरजस मण्डली में नसीबाँ रो रामरस को भक्ति विह्वल होकर महिलायें गाती हैं। इन पदों में रामजी का यश गाया गया है। इन पदों में नसीबा की भक्ति मूर्तिमती होकर सामने आती है। उसके वंशधर आज भी जारड़ा ग्राम में उसके पद गा बजा कर अपनी रोजी रोटी कमाते हैं।

उनके पद लावणिये जसवन्तपुरा, भीनमाल और साँचौर क्षेत्र के अतिरिक्त गुजरात से बावधराद, राधनपुर और पालनपुर इलाकों में लोकप्रिय हैं। इन असंख्य पदों को संग्रहीत कर प्रकाशित कराना अपेक्षित है। अपने सांस्कृतिक उत्तराधिकारों को सुरक्षित रखने का कदाचित् यही एक तकाजा है। नसीवाँ के राम रस के पद कुछ संग्रहीत भी हैं। उनकी क्षत-विक्षत पाण्डुलिपियों की रक्षा कर उन्हें प्रकाशित कराना हम सबका उत्तरदायित्व है।

साझी विरासत

■ आईएसडी

क्या आप हमारी इस साझी विरासत के बारे में जानते हैं जिसमें हिन्दू धर्म व इस्लाम में सांस्कृतिक समावेश और मेलजोल के कुछ अनोखे उदाहरण मिलते हैं जैसे :

1. अवध के नवाब तेरह दिनों तक होली मनाते थे। नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में कृष्ण रासलीला खेली जाती थी। भगवान हनुमान के सम्मान के तहत राज्य में बंदरों को मारना कानूनी अपराध था। एक मुसलमान लेखक ने सुविख्यात नाटक ''इन्द्र सभा'' का मंचन किया जिसे तमाम जनता बड़े चाव से देखती थी। जब अंग्रेज़ों ने अवध के राजा को वनवास देकर अवध से निकाल दिया, तब प्रजा रो-रोकर ''राम जी को फिर हुआ वनवास'' गीत गाती थी। नवाब का कलकत्ता का महल जिसमें वह नजरबंद रहते थे ''राधा मंजिल'' कहलाता था।
2. रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना अपने प्रिय मित्र अब्दुल रहीम खानखाना, जो बनारस के गवर्नर थे, के संरक्षण में रह कर की। रहीम खानखाना कृष्ण भक्त थे और आज भी उनके दोहे हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं। बनारस के शक्तिशाली ब्राह्मण पंडे तुलसीदास को नुक़सान पहुंचाना चाहते थे। वे चाहते थे कि तुलसीदास रामचरित मानस की रचना आम बोलचाल की भाषा में नहीं बल्कि शुद्ध संस्कृत में करें।
3. पंजाबी सूफी कवि गुरु बाबा बुल्लेशाह का असली नाम माधव लाल हुसैन था, जो कि न हिन्दू न मुसलमान नाम है। उनकी सबसे पसंदीदा पंक्तियां थीं: ''मस्जिद ढा दे, मंदिर ढा दे, ढा दे जो कुछ ढाहंदा, पर किसी दा दिल ना ढाई, रब दिलों विच रहदां''।
4. अहमदाबाद की सूफी सुहागनें खुद को भगवान की दुल्हन मानती थीं। वे हिन्दू दुल्हनों की तरह शृंगार करती थीं, लाल सिंदूर लगाती थीं। आज तक लाल सिंदूर और कांच की चूड़ियां (उनके दरगाह पर) चढ़ाई जाती हैं।
5. मुगल सम्राट शाहजहां के प्रिय कवि का नाम जगन्नाथ पंडित राज था जिन्हें सम्राट ने 'कवि राय' की उपाधि से नवाज़ा था। कवि राय हिन्दी व संस्कृत में रचनाएं लिखते थे। मुमताज़ महल बेगम की प्रशंसा में गीत लिखने वाले मुख्य कवि थे, श्री बंसीधर मिश्रा और हरि नारायण मिश्रा। राज्य में मनेश्वर, भगवती और बेदांग राजा नामक अन्य विद्वान भी थे जो ज्योतिष-शास्त्र की रचनाएं करते थे और उन्हें सम्राट को (संस्कृत में) समझाते थे।
6. प्रसिद्ध मराठा राजा शिवाजी की फौज में हिंदू व मुसलमान दोनों अफसर थे। शिवाजी सभी धर्मों को समान आदर देते थे। उनकी प्रजा और सेना को सख्त निर्देश थे कि वे औरतों, बच्चों और कुरान, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों का कभी अनादर नहीं करेंगे और न ही उन पर हमला करेंगे।
7. स्वर्ण मंदिर की नींव गुरु अर्जुन देव के प्रिय मित्र हज़रत मियां मीर ने रखी थी, जो एक मुसलमान सूफी थे। मियां मुगल युवराज दारा शिकोह के गुरु भी थे। बचपन में गुरु अर्जुन देव ने दारा शिकोह की जान बचाई थी। जिसके कारण दोनो में बहुत स्नेह था।
8. गुरु नानक के जीवन भर के साथी थे मियां मरदाना, जो एक मुसलमान थे और रबाब वादक थे। मियां मरदाना गुरुवाणी गाने वाले पहले गायक हैं। कहा जाता है कि मियां मरदाना गुरु नानक के साथ हरिद्वार से मक्का तक घूमे। मियां मरदाना के वंशज पांच सौ साल तक स्वर्ण मंदिर में रबाब बजाते थे। यह किस्सा सन् 1947 में बंटवारे के साथ खत्म हुआ।
9. रसखान एक मुसलमान कृष्ण भक्त थे जो एक बनिये के बेटे को कृष्ण का अवतार मानकर उसकी पूजा करते थे। वे उसके नजदीक रहने के लिए वृंदावन में संन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगे।

रहीम, हज़रत सरमद, दादू, बाबा फरीद जैसे बहुत से मुसलमान कवियों ने बड़ी तादाद में कृष्ण भक्ति से ओत-प्रोत रचनाएं की जिनमें से कुछ गुरु ग्रंथ साहिब में पायी जाती हैं।

10. मुसलमान राजा बाज बहादुर और राजपूत पुत्री रूपमति के प्रेम के किस्से मांडू में आज भी सुनाए जाते हैं। मांडू युद्ध में पराजित होने के बाद, रानी रूपमति ने ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली क्योंकि उन्हें बाज बहादुर से बिछड़ना गंवारा नहीं था।

11. बंगाल में देवी स्तुति के समय ऐसा भजन गाया जाता है जिसमें कहा जाता है कि जब हिंदू और मुसलमान प्रेम और शांति से एक साथ रहेंगे तभी मां लक्ष्मी वहां वास करेंगी।

12. 1857 की क्रांति में (झांसी की रानी) रानी लक्ष्मीबाई की रक्षा उनके मुसलमान पठान जनरल गुलाम गौस खान और खुदादाद खान ने की थी। उन्होंने अपनी मौत तक झांसी के किले की हिफाज़त की। उनके अंतिम शब्द थे ''अपनी रानी के लिए हम अपनी जान न्यौछावर कर देंगे''

13. 1942 में सुभाष चंद बोस की आज़ाद हिंद फौज के नारे 'जय हिंद' की रचना कैप्टन आबिद हसन ने की थी। यह नारा फौज में अभिवादन का तरीका बनाया गया। और सभी भारतीयों ने इसे मूल मंत्र की तरह स्वीकारा।

14. सरहदी गांधी, खान अब्दुल गफ़्फार खान ने स्वतंत्रता संग्राम के लिए दो लाख अहिंसावादी सत्याग्रहियों की फौज तैयार की। अंग्रेजी सल्तनत के दौरान खान साहब ने कहा, ''मेरे दीन में मेरी आस्था और भारत और बापू के प्रति मेरी वचनबद्धता दोनों एक हैं।''

15. गुरु गोविन्द सिंह के प्रिय मित्र सूफ़ी बाबा बदरुद्दीन थे। औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध में बाबा बदरुद्दीन ने अपनी, अपने बेटों, अपने भाइयों और अपने सात सौ शिष्यों की जान न्यौछावर कर दी थी। उनके अनुसार यह असमानता और अन्याय के खिलाफ इस्लाम द्वारा सुझाया सच्चा रास्ता है। गुरु गोविन्द सिंह बदरुद्दीन बाबा को बेहद प्यार व सम्मान देते थे। गुरु जी ने उन्हें अपना खालसा कंघा और कृपाण भेंट दी थी। यह दोनों चीज़ें बाबा बदरुद्दीन के दरगाह 'कंघे शाह' में अभी तक महफूज़ रखे हैं।

16. बादशाह शाहजहां के सबसे बड़े पुत्र दारा शिकोह एक उच्च कोटि के संस्कृत विद्वान थे जिन्हें काशी के पंडित, सिक्ख गुरु और सूफी संत समान रूप से चाहते थे। कहा जाता है कि दारा शिकोह को एक सपना आया था जिसमें राम भगवान ने उन्हें उपनिषद्, योग वासिष्ठ और भगवद् गीता को फारसी में अनूदित करने का आदेश दिया था। दारा शिकोह का यह अनुवाद मैक्स म्यूलर ने दुनिया भर में प्रचलित किया। बयालीस वर्ष की उम्र में दारा शिकोह ने फारसी में 'मजमौल-बहरैन' (दो समुन्दरों का मिलाप अर्थात वैदिक और इस्लामी संस्कृतियों का मिलाप) नाम के ग्रंथ की रचना की जिसमें उन्होंने हिन्दू धर्म व इस्लामी सोच की समानताओं का बखान किया। इस रचना के अनुसार हिंदू वेदान्त और इस्लामी सूफियत सिर्फ एक ही सोच के अलग-अलग नाम हैं। हिंदू धर्म में 'मोक्ष' और इस्लाम में 'जन्नत' जाने का अर्थ एक ही है यानी मुक्ति पा जाना।

■ नागार्जुन

हमने तो रगड़ा है

तुमसे क्या झगड़ा है
हमने तो रगड़ा है-
इनको भी, उनको भी, उनको भी!

दोस्त है, दुश्मन है
ख़ास है, कामन है
छाँटो भी, मीजो भी, धुनको भी

लँगड़ा सवार क्या
बनना अचार क्या
सनको भी, अकड़ो भी, तुनको भी

चुप-चुप तो मौत है
पीप है, कठौत है
बमको भी, खाँसो भी, खुनको भी

तुमसे क्या झगड़ा है
हमने तो रगड़ा है
इनको भी, उनको भी, उनको भी!

(1978 में रचित)

सच न बोलना

मलाबार के खेतिहरों को अन्न चाहिए खाने को,
डंडपाणि को लठ्ठ चाहिए बिगड़ी बात बनाने को!
जंगल में जाकर देखा, नहीं एक भी बांस दिखा!
सभी कट गए सुना, देश को पुलिस रही सबक सिखा!

जन-गण-मन अधिनायक जय हो, प्रजा विचित्र तुम्हारी है
भूख-भूख चिल्लाने वाली अशुभ अमंगलकारी है!
बंद सेल, बेगूसराय में नौजवान दो भले मरे
जगह नहीं है जेलों में, यमराज तुम्हारी मदद करे।

ख्याल करो मत जनसाधारण की रोज़ी का, रोटी का,
फाड़-फाड़ कर गला, न कब से मना कर रहा अमरीका!
बापू की प्रतिमा के आगे शंख और घड़ियाल बजे!
भुखमरों के कंकालों पर रंग-बिरंगी साज़ सजे!

ज़मींदार है, साहुकार है, बनिया है, व्योपारी है,
अंदर-अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है!
सब घुस आए भरा पड़ा है, भारतमाता का मंदिर
एक बार जो फिसले अगुआ, फिसल रहे हैं फिर-फिर-फिर!

छुट्टा घूमें डाकू गुंडे, छुट्टा घूमें हत्यारे,
देखो, हंटर भांज रहे हैं जस के तस ज़ालिम सारे!
जो कोई इनके खिलाफ़ अंगुली उठाएगा बोलेगा,
काल कोठरी में ही जाकर फिर वह सत्तू घोलेगा!

माताओं पर, बहिनों पर, घोड़े दौड़ाए जाते हैं!
बच्चे, बूढ़े-बाप तक न छूटते, सताए जाते हैं!
मार-पीट है, लूट-पाट है, तहस-नहस बरबादी है,
ज़ोर-जुलम है, जेल-सेल है। वाह खूब आज़ादी है!

रोज़ी-रोटी, हक की बातें जो भी मुंह पर लाएगा,
कोई भी हो, निश्चय ही वह कम्युनिस्ट कहलाएगा!
नेहरू चाहे जिन्ना, उसको माफ़ करेंगे कभी नहीं,
जेलों में ही जगह मिलेगी, जाएगा वह जहां कहीं!

सपने में भी सच न बोलना, वर्ना पकड़े जाओगे,
भैया, लखनऊ-दिल्ली पहुंचो, मेवा-मिसरी पाओगे!
माल मिलेगा रेत सको यदि गला मजूर-किसानों का,
हम मर-भुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का!

गुड़ मिलेगा

गूंगा रहोगे
गुड़ मिलेगा

रुत हँसेगी
दिल खिलेगा
पैसे झरेंगे
पेड़ हिलेगा
सिर गायब,
टोपा सिलेगा

गूंगा रहोगे
गुड़ मिलेगा

(1988 में रचित)

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

(1952 में रचित)

■ शमशेर

बहुत काम बाकी है

बहुत काम बाक़ी है-- टाला पड़ा है।
मगर उनकी आँखों पे' जाला पड़ा है।

सुराही पड़ी है पियाला पड़ा है
करें क्या-ज़ुबानों पे' ताला पड़ा है

बहुत सुर्ख़रूई थी वादों में जिनके
जो मुँह उनका देखो तो काला पड़ा है

कहाँ उठ के जाने की तैयारियाँ हैं
सब असबाब बाहर निकाला पड़ा है?

यहाँ पूछने वाला कोई नहीं है
जिसे भी जहाँ मार डाला, पड़ा है?

भला कोई सीना है वो भी कि जिस पर
न बरछी पड़ी है, न भाला पड़ा है!

x x x

उसे बदलियों में भी पहचान लोगे
कि उस चाँद-से मुँह पे' हाला पड़ा है

य' बादल की लट चाँद पर है, कि मन को
दबाए हुए कौड़ियाला पड़ा है

वो ज़ुल्फ़ों में सब कुछ छुपाए हुए हैं
अँधेरा लपेटे, उजाला पड़ा है

x x x

बहुत ग़म सहे हमने 'शमशेर', उस पर
अभी तक ग़मों का कसाला पड़ा है

भूला हुआ था आज तलक

भुला हुआ था आज तलक अपने घर को मैं
क्या जाने चल दिया था कहाँ के सफ़र को मैं

तुम मुस्कुरा रहे थे मुझे देख-देख कर
अपनी समझ रहा था हरेक की नज़र को मैं

गर्दिश से उन निगाहों को कुछ होश आ गया
दुश्मन समझ रहा था खुद, अपनी नज़र को मैं

ऐसे भी मोड़ आए हैं चुपचाप बार-बार
तकता था राहबर मुझे और राहबर को मैं

'शमशेर' और कुछ नहीं दुनिया जहान में
इक दिल है, ढूँढ़ता हूँ, उसी बेख़बर को मैं

राह तो एक थी हम दोनों की

राह तो एक थी हम दोनों की :
आप किधर से आए-गए!
–हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए!
किस लीलायुग में आ पहुँचे
अपनी सदी के अन्त में हम
नेता, जैसे घास-फूस के
रावन खड़े कराए गए।

जितना ही लाउडस्पीकर चीख़ा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ :
(-अल्ला-ईश्वर दूर हुए!)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन-धरम' फैलाए गए।

मूर्ति-चोर मन्दिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में!
दान-दच्छिना लाखों डॉलर
गुपुत-दान करवाए गए!

दादा की गोद में पोता बैठा,
'महबूबा ! महबूबा ...' गाए
दादी बैठी मूंड़ हिलाए...
'हम किस जुग में आय गए'।

गीत-गज़ल है फिल्मी लय में
शुद्ध गलेबाज़ी, 'शमशेर'
आज कहाँ वो गीत जो कल थे
गलियों-गलियों गाए गए!

बात बोलेगी

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।
सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या-देखें!
सत्य का रुख़
समय का रुख़ है :
अभय जनता को
सत्य ही सुख है
सत्य ही सुख।

दैन्य दानव; काल
भीषण; क्रूर
स्थिति; कंगाल
बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का
क्या रंग है?-

पूछो
एक संग।
एक-जनता का
दुःख : एक।

हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धिः मजूर घर भर।

एक जनता का - अमर वर :
एकता का स्वर।
-अन्यथा स्वातंत्र्य-इति।

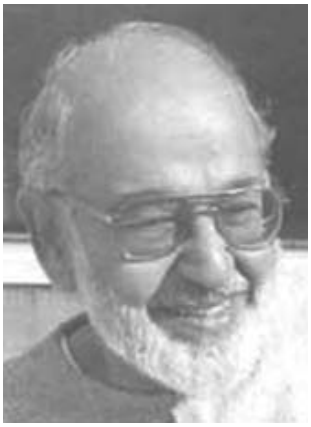

■ अज्ञेय

पंडिज्जी

अरे भैया, पंडिज्जी ने पोथी बंद कर दी है।
पंडिज्जी ने चश्मा उतार लिया है
पंडिज्जी ने आँखें मूँद ली हैं
पंडिज्जी चुप-से हो गये हैं।
भैया, इस समय
पंडिज्जी
फ़कत आदमी हैं।

जो पुल बनाएंगे

जो पुल बनाएंगे

वे अनिवार्यतः
पीछे रह जाएंगे।
सेनाएँ हो जाएंगी पार
मारे जाएंगे रावण
जयी होंगे राम,
जो निर्माता रहे
इतिहास में
बन्दर कहलाएंगे

देखिये न मेरी कारगुज़ारी

अब देखिये न मेरी कारगुज़ारी
कि मैं मँगनी के घोड़े पर
सवारी पर
ठाकुर साहब के लिए उन की रियाया से लगान
और सेठ साहब के लिए पंसार-हट्टे की हर दुकान
से किराया
वसूल कर लाया हूँ
थैली वाले को थैली
तोड़े वाले को तोड़ा
-और घोड़े वाले को घोड़ा
सब को सब का लौटा दिया
अब मेरे पास यह घमंड है
कि सारा समाज मेरा एहसानमंद है।

हवाएँ चैत की

बह चुकी हवाएं चैत की
कट गईं पूलें हमारे खेत की
कोठरी में लौ बढ़ा कर दीप की
गिन रहा होगा महाजन सेंत की

■ केदारनाथ अग्रवाल

खेत का दृश्य

आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने
फसल घँघरिया,
राधा बन कर धरती नाची,
नाचा हँसमुख
कृषक सँवरिया।

माती थाप हवा की पड़ती,
पेड़ों की बज
रही ढुलकिया,

जी भर फाग पखेरु गाते,
ढरकी रस की
राग-गगरिया!

मैंने ऐसा दृश्य निहारा,
मेरी रही न,
मुझे ख़बरिया,

खेतों के नर्तन-उत्सव में,
भूला तन-मन
गेह-डगरिया।

मानव के अग्रज

पेड़ नहीं,
पृथ्वी के वंशज हैं,
फूल लिए,
फल लिए,
मानव के अग्रज हैं।

फूल-से दिन

गेंदे के फूल-से
फूले हैं दिन,
आओ तुम आओ तो
गुलाब भी खिलें,
बाहों से बाहों में एक हो मिलें,
मिलने के फूल-से
फूले हैं दिन।

('पंख और पतवार' नामक कविता-संग्रह से)

आदमी का पानी

पानी-
जो था आदमी का पानी
दहाड़ता
स्वाभिमानी :
संघर्ष की जवानी :
पालतू है अब
आदमी का पानी
न रह गया है तेज-
न है तर्रार
न धारदार
कि उमड़े
बह जाय जंगल

रचनाकाल : 21.12.1967

■ फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

कब तक दिल की खैर मनाएँ

कब तक दिल की ख़ैर मनायें, कब तक राह दिखाओगे
कब तक चैन की मोहलत दोगे, कब तक याद न आओगे

बीता दीद उम्मीद का मौसम, ख़ाक उड़ती है आँखों में
कब भेजोगे दर्द का बादल, कब बर्खा बरसाओगे

अहद-ए-वफ़ा और तर्क-ए-मुहब्बत जो चाहो सो आप करो
अपने बस की बात ही क्या है, हमसे क्या मनवाओगे

किसने वस्ल का सूरज देखा, किस पर हिज्र की रात ढली
ग़ेसुओं वाले कौन थे, क्या थे, उन को क्या जतलाओगे

'फ़ैज़' दिलों के भाग में है घर बसना भी लुट जाना भी
तुम उस हुस्न के लुत्फ़-ओ-करम पर कितने दिन इतराओगे

जब तेरी समन्दर आँखों में

येः धूप किनारा, शाम ढले
मिलते हैं दोनों वक़्त जहाँ
जो रात नः दिन, जो आज नः कल
पल भर को अमर, पल भर में धुआँ
इस धूप किनारे पल दो पल
होंठों की लपक, बाहों की छनक
येः मेल हमारा, झूठ नः सच
क्यूँ राड़ करो, क्यूँ दोष धरो
किस कारन झूठी बात करो
जब तेरी समंदर आँखों में
इस शाम का सूरज डूबेगा
सुख सोएँगे घर दर वाले
और राही अपनी रह[1] लेगा

1. राह का संक्षिप्त रूप

आईए हाथ उठाएँ हम भी

आईए हाथ उठायें हम भी
हम जिन्हें रस्म-ए-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोज़-ए-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

आईए अर्ज़ गुज़ारें कि निगार-ए-हस्ती
ज़हर-ए-इमरोज़ में शीरीनी-ए-फ़र्दा भर दे
वो जिन्हें ताबे गरांबारी-ए-अय्याम नहीं
उनकी पलकों पे शब-ओ-रोज़ को हल्का कर दे

जिनकी आंखों को रुख़-ए-सुबह का यारा भी नहीं
उनकी रातों में कोई शमआ मुनव्वर कर दे
जिनके क़दमों को किसी रह का सहारा भी नहीं
उनकी नज़रों पे कोई राह उजागर कर दे

जिनका दीं पैरवे-ए-कज़्बो-रिया है उनको
हिम्मत-ए-कुफ़्र मिले, जुर्रत-ए-तहकीक मिले
जिनके सर मुन्तज़िर-ए-तेग़-ए-जफ़ा हैं उनको
दस्त-ए-क़ातिल को झटक देने की तौफ़ीक मिले

इश्क का सर्र-ए-निहां जान-तपां है जिस से
आज इक़रार करें और तपिश मिट जाये
हर्फ़-ए-हक़ दिल में खटकता हे जो कांटे की तरह
आज इज़हार करें और ख़लिश मिट जाये।

नाटकीय अभिव्यक्ति में साझी परंपराएं

■ आई.एस.डी.

इंद्रसभा

वाजिद अली शाह के युग में आगा हसन अमानत द्वारा लिखा गया *इंद्रसभा* नामक नाटक पहली बार लखनऊ में पेश किया गया था। कहते हैं कि इस नाटक की पहली प्रस्तुति में खुद नवाब वाजिद अली शाह ने इंद्र की केंद्रीय भूमिका निभाई थी।

इंद्रसभा ने उत्तरी भारत में लोकप्रिय नाट्य विधा के नए मानक निर्धारित कर दिए। इस नाटक में कथानक, मीटर और भाषा के मामले में हिंदू और मुस्लिम, दोनों संस्कृतियों के तत्व एक-दूसरे में समाहित हैं। यह नाटक इंद्र के दरबार को केंद्र में रखकर खेला जाता है। *इंद्रसभा* में देवताओं का राजा इंद्र परियों से घिरा रहता है। उसकी परियों में से एक सब्ज़ परी ज़मीन के एक राजकुमार, गुलफाम से प्यार कर बैठती है। इन प्रेमियों के प्रति सहानुभूति के चलते काला देव एक दिन गुलफ़ाम को इंद्र के स्वर्ग में ले आता है। नियमों के इस भीषण उल्लंघन के आरोप में इंद्र गुलफाम को बाहर फिंकवा देता है। इस पर सब्ज़ परी बड़े मार्मिक गीत गाती है और एक *जोगन* की तरह कपड़े पहन लेती है। वह विनती करती है कि उसके प्रेमी को स्वतंत्र कर दिया जाए। दोनों प्रेमियों की व्यथा को देखते हुए इंद्र आखिरकार उन्हें आशीर्वाद देता है और दोनों प्रेमी फिर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

इंद्रसभा एक ऐसी कृति है जिसमें कई विधाओं का सहारा लिया गया है। इसमें कथावाचन भी है, कविता भी है, नृत्य और संगीत भी है। और इन सबके साथ इंद्र के स्वर्गिक दरबार का एक भव्य और बेमिसाल नजारा है। परियों और देवों तथा अप्सराओं से घिरे इंद्र और उसके दरबार की विलासिता को फारस की *दास्तान* परंपरा के सहारे *इंद्रसभा* का रूप दिया गया है। असल में *इंद्रसभा* की कई थीम उर्दू के रूमानी किस्से-कहानियों से काफी प्रभावित रही है। इनमें मीर हसन की *शहर-उल-बयां* और *गुलज़ार-ए-नसीम* जैसी कृतियां भी शामिल हैं।

इंद्रसभा नाटक थोड़े से समय में पूरे देश में मशहूर हो गया था और देश के कोने-कोने में इसका मंचन हुआ था। इस नाटक का लिखित रूप भी एक जबर्दस्त सफलता साबित हुआ। इसका पहला संस्करण 1853 में छपा था जो सत्तर के दशक तक आते-आते प्रकाशन की दुनिया में शीर्ष पर पहुंच चुका था। उत्तर प्रदेश और बिहार के मुख्य शहरों के अलावा लाहौर, बंबई, कलकत्ता और मद्रास से इस नाटक के 33 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इस नाटक की प्रसिद्धि जल्दी ही यूरोप तक भी जा पहुंची और 1892 में फ्रेड्रिक रोज़ेन ने इस नाटक का जर्मन भाषा में भी अनुवाद कर डाला।

हाल ही में उभर रहे भारतीय-मुस्लिम थियेटर का व्यापक प्रभाव सवाक सिनेमा के उदय तक बना रहा। रंगमंच की दुनिया के बड़े-बड़े लोग वेशभूषा, साज-सज्जा, भाषा, संगीत और कहानी के मामले में अभिजात्य इस्लामिक परंपराओं का अनुसरण करने लगे थे। *इंद्रसभा* ने संगीत, नृत्य और कविता की दरबारी शैलियों को लोकप्रियता के नए धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया।

नक़ल

यह एक विशुद्ध अवास्तविक प्रदर्शन होता है। इसमें कलाकारों के मुखिया को *ख़लीफ़ा* कहा जाता है। वह अपनी हाज़िरजवाबी और उछल-कूद के ज़रिए ही प्रदर्शन की क्रियाओं और गति को तय करता है। *नक़ल* इस लिहाज से एक मजेदार विधा मानी जाती है कि इसमें दर्शकों पर भी कटाक्ष किया जाता है। इस विधा में भी सभी कलाकार पुरुष होते हैं। पंजाब और कश्मीर में यह विधा काफी मशहूर है और वहां इसे *नक्कौल* या *नक्काल* भी कहा जाता है।

स्वांग

स्वांग को *संगीत* भी कहा जाता है। इसका जन्म अठारहवीं सदी के आखिरी दौर से माना जाता है। हरियाणा और पंजाब में लोकप्रिय यह कला रूप नृत्य गीत और अर्ध-ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित होता है। *स्वांग* का त्यौहारों और पारिवारिक उत्सव के मौकों पर मंचन किया जाता है। इस नाट्य विधा में भी सभी कलाकार पुरुष होते हैं और यह गांव के किसी खुले स्थान पर या मेज़बान के घर में मंचित किया जाता है। यद्यपि इसमें कलाकारों की वेशभूषा साधारण होती है लेकिन पगड़ी और दाढ़ी-मूंछ को आकर्षक बनाने पर खासतौर से ध्यान दिया जाता है। इस विधा में गीत-संगीत के मुकाबले संवादों का ज़्यादा महत्व होता है।

नज़ीर अकबराबादी की शायरी में हिन्दू व हिन्दुस्तानी तहज़ीब (संस्कृति) - चन्द इशारे

■ प्रो. अली अहमद फात्मी

एक ऐसा दौर जब हिंदोस्तान में शायरी का दायरा आम तौर पर ग़ज़ल के दामन तक ही सिमटा था और सरोकार हुस्न-ओ-इश्क, जाम और सुराही एवं निजी जज़्बात तक सीमित थे, शेर-ओ-सुखन की दुनिया में एक ऐसे शख़्स ने कदम रखा जिसने शायरी को एकदम नया आयाम ही दे दिया। ग़ज़ल का दामन वैसा ही फैला रहा लेकिन नज़्म के मैदान ने भी अंगड़ाई ली। हुस्न-ओ-इश्क की दुनिया तो फूलती फलती रही लेकिन शायरी में रोटी भी फूलने लगी। आदमी खुद शायरी के केन्द्र में आने लगा। दिल की बहार के साथ मौसम की बहारें और त्यौहारों की बहारें भी शायरी में जगह पाने लगीं। आम आदमी-आम जीवन को केन्द्र में लाने वाला यह शख्स और शायर था नज़ीर। नज़ीर अकबराबादी।

नज़ीर आगरा के थे और आखिरी समय तक आगरा में रहे लेकिन जो बातें कहीं वह केवल आगरा के लोगों के लिए नहीं थीं बल्कि उसमें पूरा हिन्दुस्तान धड़कता नज़र आता है, हिंदुस्तानी संस्कृति बोलती नज़र आती है और हिन्दुस्तानी लोग रचते बसते हैं जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्मिलित हैं। नज़ीर अकबराबादी शायरी की नज़र से पूरी तरह अवामी थे और सबके थे। नज़ीर ने केवल होली पर ग्यारह नज़्में कही हैं और सब अलग-अलग शीर्षक, अलग-अलग रंग की दिखाई देती हैं। देवमाली पर दो नज़्में, राखी पर एक नज़्म इसी तरह अगर एक तरफ हज़रत सलीम चिश्ती का और ताजगंज के रोजे पर एक नज़्म है तो दूसरी तरफ कन्हैया जी के जन्म से लेकर शादी ब्याह तक शीर्षक 'जन्म कन्हैया जी', 'बालपन', 'बाँसुरी बजैया', 'लहू व लअब कन्हैया', 'कन्हैया जी की शादी', चार नज़्में हैं और एक नज़्म तो कन्हैया जी की बाँसुरी पर भी है। इसके अतिरिक्त हरि की प्रशंसा, भैरव की प्रशंसा, महादेव का ब्याह, नरसी अवतार, जोगी, जोगन आदि इसी तरह मेले ठेले में बलदेव जी का मेला, तैराकी का मेला आदि पर भी नज़्मे हैं जिनमें हिन्दू मज़हब और रीति-रिवाज़ को बहुत बारीकी से प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण जी के जन्म के बारे में उनकी मालूमात देखिए और साथ ही उनका स्वर भी। जन्माष्टमी का उत्सव पूरे ब्रज में मनाया जाता है। बच्चे के पैदा होते ही माँ बाप के घर में अन्धेरा दूर होता है और उजियारा पास आता है अब उसी दृष्टि से उनकी नज़्म कन्हैया जी की ये पंक्तियाँ देखिये :

है रीत जन्म की यूँ होती जिस घर में बाला होता है
इस मंडल में हर मन भीतर सुख-चैन दो बाला होता है
सब बात बिथा की भूले है जब भोला-भाला होता है
आनन्द मंदीले बाजत हैं जब भवन उजाला होता है
यों नेक नछत्तर लेते हैं इस दुनिया में संसार जनम
पर उनके और ही लच्छन हैं जब लेते हैं अवतार जनम
सुभ साअत से यों दुनिया में औतार गर्भ में आते हैं
जो नारद मुनि हैं ध्यान भले सब उनका भेद बताते हैं
वो नेक महूरत से जिस दम इस सिश्टि में जनमे जाते हैं
जो लीला रचनी होती है वो रूप ये जा दिखलाते हैं
यों देखने में और कहने में वह रूप तो बाले होते हैं
पर बाले ही पन में उनके उपकार निराले होते हैं

यही नहीं 32 पंक्ति की लम्बी नज़्म में जिस तरह कंस, वासुदेव, देवकी और यशोदा के किरदार, नोंकझोंक मिलती है और जन्मभूमि से लेकर रणभूमि की कृष्ण की कहानी सिमट आई है वह नज़ीर की हिन्दू धर्म और संस्कृति के समावेश का ही तो पता देती है।

नज़ीर उर्दू की नज़्म या शायरी में तरक़्क़ी की हैसियत रखते हैं। दूसरी नज़्म का एक और बन्द (पंक्ति) प्रस्तुत है :

यारो सुनो! ये दधि के लुटैया का बालपन
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन
मोहन सरूप निरत, कन्हैया का बालपन
बन बन के ग्वाल गौएं चरैया का बालपन
ऐसा था, बांसुरी के बजैया का बालपन
क्या क्या कहूं मैं किशन कन्हैया का बालपन
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन

और इसी नज़्म की अंतिम पंक्ति भी प्रस्तुत है जिसमें नज़ीर की भावना ही नहीं आस्था भी बोलती दिखाई देगी :

सब मिल के यारो किशन मुरारी की बोलो जै
गोबिन्द छैल कुंज बिहारी की बोलो जै
दधिचोर गोपीनाथ, बिहारी की बोलो जै
तुम भी नज़ीर किशन बिहारी की बोलो जै
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन
क्या क्या कहूं मैं किशन कन्हैया का बालपन

कृष्ण के साथ-साथ अब उनकी बाँसुरी की प्रशंसा भी प्रस्तुत है :

जब मुरलीधर ने मुरली को अपनी अधर धरी
क्या-क्या प्रेम मीत भरी उस में धुन भरी
ली उसमें राधे-राधे की हरदम भरी खरी
लहराई धुन जो उसकी इधर-उधर ज़री
सब सुनने वाले कह उठे जय जय हरी हरी
ऐसी बजाई किशन कन्हैया ने बाँसुरी

मोहन की बाँसुरी के मैं क्या-क्या कहूँ जतन
ली उसकी मन की मोहनी धुन उसकी चितहरन
इस बाँसुरी का आन के जिस जा हुआ बचन
क्या जल पवन 'नज़ीर' पखेरू-ओ-क्या हिरन
सब सुनने वाले कह उठे जय जय हरी हरी
ऐसी बजाई किशन कन्हैया ने बाँसुरी

इसी तरह कृष्ण जी का खेल तमाशा और उसके बाद कृष्ण के विवाह में जो दृश्य प्रस्तुत किये हैं उसका रीति रिवाज़ और भाषा व बयान के हिसाब से भी कोई जवाब नहीं- इसी तरह पार्वती की शादी का बयान भी पढ़ने से सम्बन्ध रखता है। पार्वती जवान हो गई है। माँ बाप को चिन्ता होती है। पुरोहित बुलाए जाते हैं। घर-घर वर ढूँढा जाता है। इसी तलाश में पुरोहित कैलाश पर्वत पहुँचते हैं जहाँ शिव से भेंट होती है। और वह विवाह के लिये तैयार हो जाते हैं। शादी की तैयारियां शुरू होती हैं। हवा मैदान साफ करती है। बादल पानी का छिड़काव करते हैं। मण्डप सज जाते हैं। स्थान-स्थान पर पान पत्ते रख दिये जाते हैं। कस्तूरी महकने लगती है। सभी देव बाराती की तरह आते हैं। शिवशंकर दूल्हा बने हुए हैं। उनकी सजावट देखिये :

उस वक़्त खुशी से मसनद पर शिव बैठे बनकर यों दूल्हा
मुख पान की लाली कर मेंहदी और आँखों बीच लगा कजरा
हर तार चमकता चीरे का और ताश सुनहरी का बागा
उस तारज़री के चीरे पर जो मेह्र चमकता मुकुट धरा
हर कान मुरस्सा कुन्दन थे और मुख पर सोने का सेहरा
वो सेहरा मुख पर यों चमके जूं सूरज होवे किरन भरा
वो मोती माल गले झलकें और उनमें लालों की माला
वो बाँक जड़ाऊ बाजू पर और कंगना पहुँचे झमक रहा
जब बैठे शिव यूँ दूल्हा बन सब परियों का वां नाच हुआ
और करना सरना झाँझ बजे नक़्क़ारा गूँजे शोर मचा
ये ठाठ बनाकर दिखलाया जब शिव ने माया अपनी का
हर चार तरफ़ आनन्द हुए गुल शोर हुआ खुशवक़्ती का

और अब थोड़ा भोजन का दृश्य प्रस्तुत है :

जब राजा ने यह हुक्म किया तैय्यारी हो अब भोजन की
मँगवाये मैदे लाखों मन और मेवे मिसरी शक्कर घी
हलवाई हज़ारों आ बैठे कर गरम कढ़ाव रख थाली
कर खोये सुथरे दूध मँगा, और डाली चीनी-शकर तरी
फिर डाला खूब गुलाब उसमें और डाली डलिया मिसरी की
अंबार लगाये पेड़ों के और ढेर गुलाबी और बर्फ़ी
फिर लड्डू भी तैय्यार किये दे क़न्द बहुत बादाम गरी
बुर्राक़ मुँगदर और खुर्मे भी खुश रंग इमिर्ती बीरबली
वो खूब जलेबी और खजले वो खेवर बालूसाई भी

इस तरह पूरी नज़्म में शादी, ब्याह, बिदाई, खान-पान की सारी बातें नज़ीर ने प्रस्तुत की वह असाधारण है।

नज़ीर मेले के आशिक थे। उनकी कई नज़्में उर्स और मेलों, ठेलों पर मिलती हैं लेकिन उनमें बलदेव जी का मेला बहुत महत्वपूर्ण है। वह बलदेव जी के सच्चे आशिक थे। मेले का दृश्य और उसके चित्रण के साथ बलदेव जी के प्रति उनकी श्रद्धा इस नज़्म की जान है। इस नज़्म में कोई श्रद्धा से जय-जयकार कर रहा है, कोई बलदेव जी से गुजारिश कर रहा है कि वह मेरी दौलत की रक्षा करें। मन्दिर में कहीं आरती की ठनठनाहट है तो कहीं घन्टे की छनछनाहट। ताल, मृदंग और झाँझ बज रहे हैं। मिसरी और मक्खन का प्रसाद चढ़ रहा है। एक धार्मिक मेले की जो भी सुन्दर कल्पना की जा सकती है वह इस नज़्म में सम्मिलित है। और पूरे रंग-ढंग के साथ-इसी तरह नज़ीर ने होली, दीवाली, दशहरा, आदि पर जो नज़्में कही हैं उनकी जगमगाहट पाठक की आँखों को चौंका देती हैं। उनकी इस असाधारण विशेषता को देखकर फिराक़ गोरखपुरी ने अपनी किताब ''नज़ीर बानी'' में लिखा थाः

''वह मक़ामी तहज़ीब व सक़ाफत में रंग गये थे। हिन्दू त्यौहारों, मेलों-ठेलों में बहुत दिलचस्पी लेते थे। ये वह वक्त था कि हिन्दू-मुसलमानों में कोई बेगानगी न थी।''

कुछ हिन्दू कवियों का विचार है कि नज़ीर हिन्दू धर्म के बारे में कम जानते थे। हो सकता है कि ये विचार ठीक हो कि किसी पंडित और ज्ञानी के मुक़ाबले उनकी जानकारी कम हो। ऐसी आश्चर्य की बात नहीं कि बुनियादी तौर पर वह मुसलमान थे। लेकिन जिस ढंग से वह अवामी संस्कृति में गले-गले उतरे हुए थे वहाँ इस तरह के बाहरी अन्तर मिट जाया करते हैं। फिर धार्मिक संस्कृति, ईमान अपनी एक अलग सीमा बना लेते हैं। नज़ीर पर ही काम करते हुए हिन्दी के एक आलोचक डॉक्टर दामोदर वशिष्ठ ने नज़ीर की धार्मिक जानकारी के बारे में लिखा हैः

''नज़ीर के अहद में हिन्दू अवाम के बीच जो धर्म चल रहा था वह रिवायती और लोक प्रचलित हिन्दू धर्म था। ये वही धर्म था जिसे हिन्दू वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत वगैरह ग्रन्थों से निकला हुआ मानते थे। इस काल में वैदिक देवी-देवताओं के मक़ाम पर पौराणिक देवी-देवताओं की मान दान ज़्यादा हो गयी थी। कृष्ण की पूजा ज़्यादा थी। नज़ीर ने कृष्ण के मुतालिक ज़्यादा शायरी की है। कृष्ण का वही रूप चलन में था। कवि नज़ीर के कृष्ण काव्य में कहीं भी उनका रसिक रूप नहीं आया है लिहाज़ा नक़्क़ादों का ये कहना बेबुनियाद है कि रीतिकालीन कृष्ण महज़ रसिक और

लम्पट ही हैं।''

इन कथनों से पता चलता है कि हिन्दी के कुछ शायरों ने तो फिर भी कृष्ण को आशिक, छेड़छाड़ करने वाले नौजवान या भगवान की तस्वीर प्रस्तुत की है लेकिन नज़ीर के यहाँ सिर्फ आस्था है और व्याख्या और शब्दों में हिन्दू संस्कृति का असाधारणीय वर्णन- जिस में अगर एक ओर इस्लाम की सूफ़ियाना व्याख्या है तो दूसरी ओर भक्ति का ज्ञान और आत्मसम्मान भी- इस मिले-जुले हिन्दुस्तानी सूफ़ियाना कल्पना का रस लेना है तो नज़ीर की उन नज़्मों का अध्ययन भी ज़रूरी है जो हिन्दुस्तान की जन संस्कृति, ज़िन्दगी और रीति रिवाज़ की सीमा में सीधे आते हैं। उनकी नज़्में कौड़ीनामा, रोटीनामा, आदमीनामा, बंजारानामा, फनानामा, जोगीनामा, फकीरों की सदा, कलजुग, मुफलिसी आदि ऐसी हैं जो धार्मिक नज़्मों के मिज़ाज व मज़ाक और हिन्दुस्तानी जन संस्कृति और नज़ीर के अपने मिज़ाज, तजुरबात (अनुभव), ज़िन्दगी की सच्चाई, साधारण समाज की सोच और लोकगीतों की हरकत सब इस तरह घुल-मिल गये हैं और इस परम्परा को ज़िन्दा करते हैं जो अमीर खुसरो के बाद किसी कारण से बिखर गयी। बंजारानामा के ये बन्द देखिये जो हिन्दुस्तान की किसी भी संस्कृति के सामने रखे जा सकते हैं :

टुक हिर्स-ओ-हवा को छोड़ मियाँ मत देस-बिदेस फिरे मारा
कज़्ज़ाक अजल का लूटे है दिन-रात बजाकर नक़्क़ारा
क्या बधिया भैंसा बैल शुतुर क्या गोनें पल्ला सर भारा
क्या गेहूँ चावल मूँठ मटर क्या आग धुवां और अंगारा
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा

गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरी भारी है
ए ग़ाफ़िल तुझसे भी चतुरा इक और बड़ा व्योपारी है
क्या शक्कर मिस्री क़न्द गरी क्या साँभर मीठा खारी है
क्या दाख मुनक़्क़े सोंठ मिर्च क्या केसर लौंग सुपारी है
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा

ये धूम-धड़क्का साथ लिये क्यों फिरता है जंगल-जंगल
इक तिनका साथ न जावेगा मौकूफ़ हुआ जब अन्न और जल
घर-बार अटारी-चौपारी क्या ख़ासा तनसुख है मलमल
क्या चिलमन पर्दे फ़र्श नये क्या लाल पलंग और रंगमहल
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा

इसी तरह कलजुग नज़्म का भी एक बंद प्रस्तुत है :
जो चाहे ले चल इस घड़ी सब जिन्स यां तैयार है
आराम में आराम है, आज़ार में आज़ार है
दुनिया न जान इसको मियाँ दरिया की ये मंझधार है
औरों का बेड़ा पार कर तेरा भी बेड़ा पार है
कलजुग नहीं करजुग है ये यां दिन को दे और रात ले
क्या खूब सौदा नक़्द है इस हात दे उस हात ले

नज़ीर की इन पंक्तियों और इस तरह के न जाने कितनी पंक्तियों से साफ़ प्रस्तुत है कि उनके पास हिन्दुस्तानी और जनसाधारण ज़िन्दगी के बहुत अनुभव थे और हर तरह के शब्दों का खज़ाना। जो कलम से निकलता है धाराप्रवाह निकलता है। ज़िन्दगी का शायद ही कोई ऐसा पहलू हो जिस पर नज़ीर ने नज़्में न कहीं हों। उन्होंने हिन्दुस्तानी ज़िन्दगी की सच्ची वास्तविकता को अपना शेरी ईमान बना लिया था। वह केवल इंसान थे। एक सच्चे ईमानदार जन शायर जो हिन्दुस्तान की असली जनता और उनकी भीड़भाड़ में खड़ा हर क़दम और हर तरह के लोगों के साथ देखा जा सकता है। उनके यहाँ त्यौहारों, देवताओं, इंसानों और हद ये कि मौसमों, परिंदों, मेलों-ठेलों में कोई धार्मिक अन्तर नहीं रह गया था। उर्दू शायरी खंगाल डालिये, जन्म से लेकर मौत तक पूरी ज़िन्दगी का रस, जोश, हौसला और उमंग के साथ ऐसा वर्णन कहीं और नहीं मिलता। ये नज़ीर की भरपूर और सम्पूर्ण सच्चाई का वर्णन है। औरों ने वास्तविकता के नाम पर ज़िन्दगी का कोई एक पहलू दिखाया। नज़ीर ने पूरी ज़िन्दगी खँगाल दी, औरों ने भी हमें धरती के गीत सुनाये लेकिन नज़ीर ने धरती आकाश के गीतों को सारी इंसानियत के पहलू में पेश किया। औरों के यहां असाधारण इश्क मिलता है। नज़ीर ने इस असाधारण प्रेम को पहले साधारण बनाया और फिर इस साधारणपन में अपनी भक्ति और आस्था के तत्व डाल कर इसे असाधारण बना दिया और ये इसलिए कि इन्होंने दिल्ली, लखनऊ, दबिस्तान, उर्दू और मुसलमान आदि की छोटी सीमा से निकल कर हिन्दुस्तान जैसे बड़े दायरे में सम्मिलित कर लिया जहाँ उर्दू के असाधारण नक्काद की नज़र न पहुंच सकी। लेकिन एहतिशाम हुसैन जैसे बड़े आलोचक को यह बात माननी पड़ी :

''नज़ीर ने अवाम के जज़्बात की तरजुमानी की तो अवाम ने ही नज़ीर को ज़िन्दा रखा वरना उर्दू शायरी की मेयारपरस्ती ने तो नज़ीर को खत्म ही कर दिया था अगर फक़ीरों, गदागरों और मामूली पढ़े-लिखे लोगों ने नज़ीर के बंजारानामा, आदमीनामा और दूसरी नज़्मों को याद न रखा होता।''

हिन्दुस्तान में लोकगीतों को गाये जाने का रिवाज़ काफी पुराना है। मुस्लिम दरवेशों के आगमन और उनके धार्मिक प्रचार, सुलह व आशती का संदेश उन्होंने लोगों तक पहुंचाया और संदेश पहुंचाने का बहुत बड़ा मीडियम था उनके लोकगीतों में उनके ढंग में ही प्रेम और भाईचारगी की बात करना। हज़रत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, सय्यद सालार ग़ाज़ी मसऊद, बाबा फरीद शकरगंज आदि जैसे बुजुर्ग लोकगीतों में जगह पा गए।

अज़हर अली फारूकी अपनी किताब ''उत्तर प्रदेश के लोकगीत'' में लिखते हैं :

''आम मुसलमानों में हिन्दुस्तान की देसी बोलियों में गीत बनाने और गाने का जज़्बा हज़रत अमीर खुसरो के गीतों की देन समझना चाहिए। खुदाई रात, रतजगा, चादरगागर वगैरह

गीत उन्हीं गीतों का तकलीदी रुझान है।''

उर्दू में अमीर खुसरो की परम्परा और हिन्दू व हिन्दुस्तानी गीतों की शुरुआत अगर दूर तक चलती तो नज़ीर की पहचान हमारे एक रूप हिंदुस्तानी संस्कृति और अवामी नज़्म में आत्मीय प्रभाव के नये-नये दरवाज़े खोल देती और हमारा दामन और फैल जाता और उर्दू के रिश्ते गाँव और जन समाज से और बेहतर ढंग से जुड़ जाते लेकिन हुआ ये कि ऐसे गीतों के हुनर को मयारपरस्ती ने समा लिया और ये गीत खानकाह व दायरों की महफ़िलों में कव्वाली की सूरत में सिमट गये।

अमीर खुसरो और नज़ीर अकबराबादी के बीच चार-पाँच सौ साल का एक लम्बा ऐतिहासिक फासला हो गया लेकिन इसे केवल इत्तिफाक के अलावा और क्या कहा जाए कि इस लम्बे समय के बीच न कोई दूसरा खुसरो पैदा हुआ और न नज़ीर- वरना शायद उर्दू अब इससे वंचित न रह जाता और हिन्दुस्तान के साहित्य की तरह उसके रिश्ते भी हिन्दुस्तान की असल जनता के हाथ में होते और उन सबके गीत उनके दिलों में धड़कते होते। नज़ीर की शायरी की प्रसिद्धि हिन्दू जन में कितनी है उसको देखना है तो एक बार ब्रज के रास्तों में घूम आइये। मुख्य तौर पर बसन्त के अयाम में जहाँ आज भी नज़ीर की मौत के लगभग पौने दो सौ साल के बाद भी उनकी नज़्में बहुत प्रसिद्ध हैं और ढोलक पर गाई जाती हैं। वृन्दावन के मन्दिरों में नज़ीर के गीत भजन की तरह गाये जाते हैं जिसके कारण कम से कम इलाके में नज़ीर-नज़ीर अकबराबादी कम-मियाँ नज़ीर की हैसियत से पहचाने नहीं बल्कि पूजे जाते हैं। आगरा के ताजगंज में बसन्त पंचमी के दिन नज़ीर मेला आज भी लगता है जहाँ शाम ढले हिन्दू-मुस्लिम सभी होते हैं। मज़ारे नज़ीर पर फूल चढ़ाने के बाद उनकी नज़्में गाई जाती हैं और निचले तबके के लोग जिनमें दर्जी, हलवाई, मोची, रंगरेज़, कलईगर, खीरा, ककड़ी बेचने वाले, तांगा-इक्का चलाने वाले जो साल भर किताब का एक पन्ना नहीं उलटते नज़ीर की लम्बी-लम्बी नज़्में झूम-झूम कर सुनाते हैं। ये मेला न केवल असल हिन्दुस्तानी जनसंस्कृति की गुम होती हुई याद बनता जा रहा है, जहाँ इकट्ठे तौर पर गाये जाने वाले नज़ीर के गीत पूरी उर्दू शायरी के लिए ताज़याने का काम करते हैं कि उर्दू के इस अलबेले और कलन्दर शायर को उर्दू शायरी की नज़ाकत और स्वर खा गया। वरना सच तो ये है कि नज़ीर की अवामी शायरी में जो हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तानी संस्कृति बोलती और धड़कती नज़र आती है वह तो अधिकतर हिन्दू या हिन्दी के शायरों के यहाँ भी नज़र नहीं आती।

नज़ीर की सम्पूर्ण अवामी और सांस्कृतिक शायरी को समझने के लिए एक बड़े पैमाने और दफ्तर की आवश्यकता है और उसको ठीक तरह से समझने के लिए बहुत मेहनत और खुले दिमाग की भी। नज़ीर के जाने वालों ने उसके साथ न्याय नहीं किया। हिन्दी के अदीबों व आलोचकों ने नज़ीर की इस तरह की शायरी को हमसे बेहतर समझा और इंसाफ किया। नज़ीर ब्रज भाषा का लोक गीतकार न सही लेकिन उर्दू का एक ऐसा अवामी शायर अवश्य है जिसने नज़्म और लोकगीत और हिन्दू मुस्लिम जन संस्कृति के बीच एक नई और अलग राह निकालने की कोशिश की है। अब आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दुस्तान के इस जनतंत्र व मिली-जुली संस्कृति में नज़ीर की हिन्दुस्तानी संस्कृति से मालामाल शायरी को नये आयाम से देखा जाए तब ही हम न सिर्फ नज़ीरशनासी बल्कि हिन्दुस्तान शनासी का हक़ अदा कर सकते हैं-

मजनूँ गोरखपुरी ने नज़ीर पर ही निबन्ध लिखते हुए कहा था : ''मेरा दावा है कि हमारी ज़बान में अगर रीछ का बच्चा, बन्जारानामा, हन्सनामा, मुफलिसी वगैरह नज़्में मौजूद न होतीं तो बरखा रुत, रहम व इंसाफ, असलम की बिल्ली, हाली और इस्माईल मेरठी की इस क़िस्म की नज़्में अभी न जाने कितनी देर के बाद हम को मिलतीं और उनके रास्ते में न जाने क्या-क्या दिक्कतें होतीं- उसको मानते हुए हमारी तबीयत हिचकती है।''

इसी तरह इस नाचीज़ का भी यकीन है कि अगर नज़ीर ने कृष्ण, महादेव, बलदेव, होली, दीवाली पर इस तरह की अवामी, जानदार और यादगार नज़्में न कही होतीं तो इक़बाल को राम और हसरत को कृष्ण को समझने में देर लग जाती और ग़ालिब भी शरीर के जलाये जाने की बात न करते। सरदार जाफरी ने तो वेद पवित्र को सूरज की किरन तक कह दिया (देखिये नज़्म वेद मुकद्दस) उदाहरण और भी हैं। पूरी उर्दू शायरी में हिन्दू तहज़ीब और हिन्दुस्तानी संस्कृति की जो पहचान है उसकी भी वह शक्ल न होती जो आज है।

नज़ीर अकबराबादी से लेकर नज़ीर बनारसी तक का सफ़र हिन्दुस्तानी संस्कृति का बहुत अनमोल सरमाया है जिसको आज की सिमटती बिखरती हुई संस्कृति में कुछ अधिक रोशन करने की आवश्यकता है।

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26196356, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar@rediffmail.com

वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए